मेरी यादों के चिनार



कृष्ण चन्दर

1961

प्रथम संस्करण
अक्तूबर, १९६१

मूल्य
तीन रुपये

प्रकाशक :
राजपाल एण्ड सन्ज़
पोस्ट बाक्स १०६४, दिल्ली

कार्यालय व प्रेस :
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली

विक्री-केन्द्र :
कश्मीरी गेट, दिल्ली

युगान्तर प्रेस, दिल्ली में मुद्रित

मुझे सेब पसन्द हैं

पूनम की सुबह थी। सुबह उठते ही मां ने मुझे नहलाया, मुझे पहनने के लिए एक कोरी, सफेद धोती दी, मेरे कन्धे पर जनेऊ डाल दिया। फिर बंगले के बरामदे को खुद अपने हाथ से धोकर चमकाया। मेरे लिए एक छोटा-सा गलीचा विछा दिया और खुद मिसिरजी को सामने की पहाड़ी की घाटी से बुलाने के लिए चल दी। घर में पाच नौकर मौजूद थे, मगर पूनम की सुबह को मां मेरा काम खुद करती थी, क्योंकि मैं अपने मां-बाप का एकलौता वेटा था और पूनम का दिन मेरा दिन होता था। उस दिन किसी नौकर को मुझे हाथ न लगाने दिया जाता था।

एक घण्टे तक मैंने गायत्री का जाप किया। फिर बरामदे से वाहर सूरजमुखी के फूलों को देखने लगा, जिनके चेहरे उस समय पूर्वी आकाश की ओर उठे हुए थे। आकाश पर कहीं भी रात के तारो की राख वाकी न थी। आकाश का फर्श, विलकुल हमारे बंगले के फर्श की तरह धुला-धुलाया और नीला था। सूरज अभी अपने वरामदे मे नही आया था, शायद उसकी मां उसे नहला रही होगी। मेरा खयाल है, सूरज रोज़ नहाता होगा, जभी तो उसका चेहरा हर रोज़ इस कदर साफ और चमकीला होता है। मेरा खयाल है कि सूरज की मां भी मेरी मां की तरह सख्तदिल होगी, जो हर रोज़ अपने वेटे को नहाने पर मजबूर करती है। कभी-कभी नहाना तो मुझे भी अच्छा लगता है, खास करके घाटी के नीचे वहनेवाली नदी मे नहाना, जहां से पनचक्की का पानी झरने की तरह नदी मे जा मिलता है। नीले पानी मे लाखो वुलवुले फूटते हैं और शरीर मे गुदगुदी करते चले जाते हैं, विलकुल ऐसे ही जैसे तारा मेरे जिस्म मे गुदगुदी करती है।

आप तारां को नही जानते हैं न ! तारां भोलू चमार की लड़की है, जो हमारे बंगले के नीचे की घाटी मे एक छोटे-से झोपड़े में रहता है। तारां बहुत गरीब है। उसका झग्गा (कुर्ता) जगह-जगह से फटा रहता है, और उसकी सलवार में भी चीथडे लगे रहते हैं। उसके बालों में उसकी मां कभी तेल नही लगाती, क्योंकि वे लोग तेल सिर मे लगाने के लिए नहीं, बल्कि खाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। मेरी मां को उन लोगों से बड़ी नफरत है, क्योकि वे लोग गरीब हैं और नीच ज़ात के हैं। मुझे भी तारां के मां-बाप बिलकुल पसन्द नही है। बडे सूखे, सांवले, मरियल-से नज़र आते हैं, जैसे हर वक्त भूखे रहते हों। मेरी मां बिलकुल उन्हे पसन्द नही करती, मगर वे दोनों हर रोज़ आकर कुछ न कुछ मांगते रहते हैं, क्योकि भोलू चमार के पास कोई ज़मीन नहीं है। वह केवल जूते बनाता है।

लेकिन तारां मुझे पसन्द है। उसका चेहरा बिलकुल गोल है, चांद की तरह। जब वह अपने छोटे-छोटे होंठ खोलकर हंसती है तो मुझे बहुत प्यारी लगती है। मैंने तै कर लिया है कि मैं बड़ा होकर तारां से शादी करूंगा। मगर इसमें बहुत समय बाकी है। मेरी उम्र आठ साल की है और तारां केवल छः साल की है। अभी हम लोगो को अपने मां-बाप की तरह बड़ा होने में बहुत साल लग जाएंगे। न जाने ये बड़ी उमर के लोग हम छोटे बच्चो को शादी क्यों नहीं करने देते ! मेरी मां तो मुझे तारां से खेलने भी नही देती। हम दोनों छुपकर खेलते हैं, और तारां खेलते-खेलते जब मुझसे नाराज़ हो जाती है तो मुझसे शादी करने से इनकार कर देती है। दरअसल वह दो शादियां करना चाहती है। कुछ महीने हुए जब राजा साहब का महावत हाथी पर सवार होकर हमारे बंगले के सामने से गुजरा था, तब से तारां ने तै कर लिया है कि वह पहली शादी महावत से करेगी और दूसरी मुझसे। जब मैं उससे कहता हूं कि तू दो शादियां नही कर सकती, तो वह मुंह चिढ़ाते हुए कहती है, "क्यो नही कर सकती ? अगर मिसिर गगाराम दो शादियां कर सकता है तो मैं क्यों नही कर सकती ?" इसका मेरे पास कोई जवाब नही है। जब तारां की किसी बात का जवाब मेरे पास नहीं होता है तो मैं उसे पीटता हूं। जब भी वह दूसरी शादी की बात करती है तो मैं उसे पीटता हूं।

"अरे, मैं तो तुमको गायत्री-मन्त्र पांच सौ बार पढ़ने के लिए कह गई थी !

यह तुम चुपचाप गलीचे पर बैठे सूरजमुखी के फूलों को क्या घूर रहे हो ?"

मांजी मिसिरजी को लेकर वापस आ गई थी।

मां की आवाज सुनकर मैं घबरा गया और जल्दी-जल्दी ऊंचे स्वर में गायत्री-मन्त्र का जाप करने लगा। मां ने अपने गुस्से को दबाते हुए मिसिरजी से कहा, "अजीब बच्चा है, न जाने हर समय किन खयालों मे खोया रहता है !"

मिसिर गंगाराम बोले, "इसीलिए मेरा सिद्ध किया हुआ कोई मन्त्र इसपर नही चलता। यह मन्त्र याद ही नहीं करता है ...।"

मेरी मां ने मुझे मारने के लिए हाथ उठाया, मगर मिसिरजी ने फौरन यह कहते हुए रोक दिया, "ना ! ना ! इस शुभ घड़ी में बच्चे को मारना ठीक नही है।"

मा बड़बड़ाती हुई पीछे हट गई। मिसिरजी ने पूछा, "सत-नाजा तैयार है ?"

पूनम के रोज़ मुझे सत-नाजे से तोला जाता है। जितना मेरा वज़न होता है, उतने वजन के सात अनाज मिलाकर सत-नाजा बनता है। उरद, चने, चावल, गेहूं, तिल, मक्का और जवा। फिर मुझे बरामदे के बाहर बगीचे मे बटंग के पेड़ से लगे हुए लकड़ियां तोलनेवाले बड़े तराज़ू के एक पलड़े में खडा कर दिया जाता है। दूसरे पलडे में सत-नाजा डाला जाता है, और जब दोनों पलड़ो का वज़न बराबर हो जाता है तो मुझे पलड़े से निकाल लिया जाता है और सत-नाजा मिसिरजी के हवाले कर दिया जाता है, जो इतने समय में बराबर कोई मन्त्र पढ़ते रहते हैं। यह आठ साल से हो रहा है, और इसलिए हो रहा है, क्योंकि मैं अपने मां-बाप का एकलौता बेटा हूं और बहुत दुबला-पतला हूं। मां मुझे बहुत खिलाती-पिलाती रहती है, लेकिन पिताजी के विचार मे वह मुझे जितना खिलाती-पिलाती है, उतना ही मैं दुबला-पतला होता जाता हूं। मेरे पिताजी का खयाल है कि अगर मेरी मां मेरी सेहत की इतनी देख-भाल न करे और मुझे मेरे हाल पर छोड दे तो मैं बहुत जल्द मोटा और तगड़ा हो सकता हूं। मगर मेरी मां तो यह सुनते ही गुस्सा हो जाती है और मेरे पिताजी से कहती है, "तुम बड़े सख्तदिल हो, तुम्हें अपने बच्चे से ज़रा भी प्यार नही है !"

मुझे अपने पिताजी बहुत पसन्द हैं, क्योंकि वे कभी-कभी मेरे साथ खेलते

हैं। लेकिन मेरी मां मेरे साथ कभी नहीं खेलती, हर समय डांटती रहती है और खिलाती-पिलाती रहती है। आपको मालूम नहीं है कि अब मुझे खाने से कितनी नफरत हो गई है। मैं दूसरे बच्चों की तरह रहना चाहता हूं, जिन्हें दिन में केवल एक बार खाना मिलता है, नाश्ता कभी नहीं मिलता। फल केवल वही मिलते हैं जो मैं अपने बाग से चुराकर दे देता हूं। उन बच्चों ने कभी एक अंडा तक नहीं खाया, मुझे हर रोज़ अंडा खाना पड़ता है। फिर भी वे दूसरे लड़के मुझसे बहुत तगड़े हैं। मैं उन लोगों से ज़्यादा तेज़ दौड़ सकता हूं, मगर कुश्ती और मुक्केबाज़ी और पंजा लडाने में वे मुझसे ज़्यादा ताकत रखते हैं।

जब मिसिरजी मुझे लकड़ियोंवाले तराजुओं में तौलकर सत-नाजा समेट चुके तो मेरी मां ने मुझे लाकर दूसरे कपड़े दिए। गहरी नीली नेकर और आसमानी रंग की कमीज़। नेकर कार्डराय मखमल की थी और कमीज़ की नीली सतह बिलकुल आसमान की सतह की तरह फिसलनेवाली मालूम होती थी। मां ने मिसिरजी को मेरी कोरी सफेद धोती दे दी, जो उसने कल ही बाज़ार से मंगवाई थी। फिर उसने मिसिरजी को दो रुपये नकद भी दिए। मिसिरजी ने मुझे और मेरी मां को आशीर्वाद दिए और सारा सामान लेकर अपने घर की ओर रवाना हो गए और जब वे बरामदे के जंगले से निकलकर बाहर की पगडंडी पर हो लिए, तो मेरे पिताजी अपने कमरे से बाहर आकर पूछने लगे, "मिसिरजी का झाड पूरा हो गया ?"

"हां हो गया," मेरी मां तुनककर बोली।

"अब इसके बाद क्या गुरुद्वारे जाओगी ?"

"हां-हां, जाऊंगी ! ज़रूर जाऊंगी ! और क्यों न जाऊं ? तुम्हें तो अपने बच्चे की सेहत की फिक्र ही नहीं। देखो तो, न जाने कैसा भयानक रोग लगा है मेरे लाल को ! दिन पर दिन दुबला होता जा रहा है !"

मेरे पिताजी ने मुझे सर से पांव तक देखा। मुझे आंख मारी, फिर मुस्कराकर बोले, "भागवान, तेरे बेटे को कोई बीमारी नहीं है सिवाय इसके कि वह हम दोनों का एकलौता बेटा है। मेरे विचार में अब समय आ गया है कि हम एक बच्चा और पैदा करें…"

"हैं-हैं ! कैसी बातें करते हो ? इस छोटे बच्चे के सामने ? तुम्हें शरम नहीं आती ?"

मेरी मां कुछ खफा होकर, कुछ खुश होकर, कुछ घबराकर, कुछ लजाकर बोली, "मैं गुरुद्वारे जाती हूं। तुम्हे तो हर वक्त मजाक ही सूझता है। क्यों न हो, आर्यसमाजी ठहरे ! तुम्हारा तो कोई धर्म ही नही है।"

मेरी मां सनातन धर्म की पुजारिन थी, बाप आर्यसमाजी थे। दोनों में अक्सर नोंक-झोक रहती। कभी-कभी इस बहस में वे मुझे भी शामिल कर लेते। जब पिताजी मुझसे वहुत लाड-प्यार करते तो मेरी मां को चिढ़ाने के लिए पूछते, "मेरा वेटा आर्यसमाजी है न ?"

मैं उनकी गोद में मचलकर कहता, "हां, मैं आर्यसमाजी हूं।"

फिर कभी मेरी मां मुझसे लाड-प्यार करती। मुझे अपनी गोद में लेकर मेरा मुंह चूमती और पिताजी को दिखाते हुए मुझसे कहती, "मेरा वेटा तो सनातनी है। क्यों वेटे, तुम सनातनी हो न ?"

"हां मां, मैं सनातनी हूं।" मैं भी बड़े लाड़ से उसकी गर्दन मे बाहें डालकर कहता, "मैं तो अपनी मां का सनातनी वेटा हूं।"

ऐसे मौके पर मेरी मां जुवान निकालकर पिताजी को चिढ़ाती, और फिर वे दोनो कहकहे मारकर हंस पड़ते। मैं इस खेल से वहुत आनन्द प्राप्त करता।

गुरुद्वारे जाने के लिए दो रास्ते थे। एक तो बाजार से होकर गुरजता था, दूसरा रास्ता हमारे बंगले के पीछेवाले बाग से होकर जाता था। हम दोनों बागवाले रास्ते से चल दिए। यह अगस्त का खूवसूरत दिन था। हमारे बाग मे सेव सुर्ख हो चले थे और नाशपातियों का रंग तारां के चेहरे की तरह सुनहरा हो चला था। उनकी जिल्द भी उसी तरह मुलायम व चमकीली दिखाई देती थी। चिनार के पत्तों को जैसे आग ने छू लिया था। सितम्बर मे ये चिनार के पत्ते बिलकुल आग के शोलों की तरह भड़क उठेगे। और फिर वे पत्ते खड़खड़ाकर ज़मीन पर गिरने लगेंगे। मैं और तारां इन पत्तों मे खेलेंगे। हम लोग इन सुनहरे पत्तों के ताज वनाएंगे और एक-दूसरे को पहनाएंगे। तीन-चार पत्तों को मिलाकर उन्हे नदी के किनारे उगे हुए सरकंडो की तीलियों से जोडकर किश्तियां वनाएंगे और उन्हे नदी मे छोड़ देंगे। चिनार के सुनहरे पत्तोंवाली किश्तियां जब नदी की सतह पर तैरती हैं, तो बिलकुल ऐसा मालूम होता है गोया राजाजी के महल के तालाव में कमल के फूल खिले हुए हैं।

यह पूनम की सुवह सचमुच की खूवसूरत थी और यह पूरा दिन मेरा दिन

होता था और मुझे बहुत अच्छा मालूम होता था। मेरी मां संभल-संभलकर बड़े गर्व से चल रही थी और मैं उसके इर्द-गिर्द चक्कर खाता हुआ कभी भागकर आगे बढ़ जाता और फिर रुककर उसकी राह देखने लगता और कभी पीछे रहकर तितलियां पकड़ने में लग जाता। वह चिल्लाकर कभी मुझे आगे बढ़ जाने पर और कभी पीछे रह जाने पर डांटती। सचमुच बच्चों के लिए बड़ी मुसीबत है। उन्हें कभी यह मालूम नही हो सकता कि बड़े क्या चाहते है। पीछे रह जाऊं तो गाली खाऊं। साथ चलो तो कहते है, क्या मेरे साथ चिपककर चल रहे हो ? आगे बढ़ो।···कुछ समझ में नही आता कि ये बड़े क्या चाहते है।

मुझे पूनम की सुबह में गुरुद्वारे जाना बहुत पसन्द है। वहां लोग ढोलक और बाजे पर गीत गाते है, जो मन्दिर में नहीं गाए जाते। एक सफेद दाढीवाला बुड्ढा बडी खूबसूरत-सी किताब खोले कुछ पढ़ता रहता है और बार-बार चंवर हिलाता रहता है और जो वह पढ़ता है वह बड़ा ही मीठा और अच्छा मालूम होता है। मै उसका मतलब तो नही समझता, मगर वह मुझे बहुत अच्छा लगता है। फिर सब लोग खड़े होकर अर्दास करते है। अर्दास के बाद मेरी आंखे खुशी से चमकने लगती हैं, क्योकि मुझे मालूम है कि अर्दास के बाद हलुआ मिलेगा। पीतल की एक बड़ी परात में बहुत-सा हलुआ भरकर उसके ऊपर सफेद मलमल का कपड़ा डाले एक आदमी आगे बढ़ता है। मैं अपनी दोनो हथेलियां जोड़कर उसके आगे कर देता हूं और वह मेरी दोनो हथेलियो को गर्म-गर्म हलुए से भर देता है। कभी-कभी तो हलुआ इस तरह गर्म होता है कि मैं हलुए को दोनों हथेलियो पर नचाता रहता हू, मगर नीचे नही गिरने देता। हलुआ मीठा, नर्म और महकता हुआ मिलता है। मैं अपनी मां से कहता हूं कि जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तो जरूर गुरुद्वारे का ग्रन्थी बनूंगा। मेरी मां अफसोस से सर हिलाकर कहती है, "तू नही बन सकता, मेरे बच्चे, क्योंकि तू हमारी एकलौती औलाद है। अगर तेरा कोई दूसरा भाई होता तो हम तेरे केश रखवा देते।" उस ज़माने में, यानी मेरे बचपन के जमाने मे यह रिवाज था कि अक्सर हिन्दू घरों में बड़े लड़के को केशधारी सिक्ख बना दिया जाता था।

गुरुद्वारे से बाहर निकलकर चन्द कदम के फासले पर पीपल का एक बहुत

बड़ा पेड़ था, जिसके तने के चारों ओर पक्का चबूतरा बना हुआ था और इस चबूतरे पर तुलसी के गमलों के बीच पत्थर की कई टूटी-फूटी मूर्तियां रखी हुई थीं। एक मूर्ति तो बिलकुल मेरी मां के चेहरे की तरह सुन्दर थी। एक और मूर्ति थी जो नाच रही थी, लेकिन उसकी एक टांग टूट गई थी। उसके चार हाथ थे। एक बे-सर की मूर्ति थी जिसका शरीर एक जवान औरत का-सा था। वह जिस्म ऐसा ही खूबसूरत था जैसा उन लड़कियो का होता है जो सुबह-सवेरे हमारे बंगले के सामने की पगडंडी पर सर पर घड़े उठाए हुए पानी के चश्मे की ओर जाया करती है।

बहुत-सी मूर्तियों पर सिंदूर लगा हुआ था। चबूतरे के करीब दो बांसों को गाड़कर किसीने लकड़ी और घास-फूस का एक छज्जा-सा बना दिया था। इस छज्जे से एक घंटा लटक रहा था। मां ने तुलसी के पत्ते तोड़कर मूर्तियों के आगे रखे और खुद हाथ जोड़कर मुझे भी हाथ जोड़ने को कहा। फिर आंखें बन्द करके प्रार्थना करने लगी। मगर मैं आंखे खोले उन खूबसूरत मूर्तियों को देखता रहा। जब मां छज्जे का घंटा बजाने लगी, तब मेरा जी भी घंटा बजाने को मचल गया। मैंने मां से कहा, "मा, मेरा जी पुजारी बनने को चाहता है, क्योकि फिर मुझे हर रोज़ घटा बजाने को मिलेगा।"

"अरे पगले!" मेरी मां ने मुस्कराकर मुझसे कहा, "तू पुजारी नही बन सकता।"

"क्यों नहीं बन सकता?"

"तू क्षत्रिय है, ब्राह्मण नही है, केवल ब्राह्मण ही पुजारी बन सकते हैं।"

क्षत्रिय लोग क्यो घंटा नही बजा सकते, यह बात मेरी समझ मे नही आई। आखिर मैंने सोच-सोचकर मां से कहा, "तो मैं बड़ा होकर ब्राह्मण बन जाऊंगा।"

"तू तो निरा अहमक है।" मा ज़ोर से हंसी, "भला क्षत्रिय कभी ब्राह्मण हो सकते हैं, नामुमकिन है।"

क्यो नामुमकिन है, यह बात भी मेरी समझ में नही आई। अगर छोटे बड़े हो सकते हैं तो क्षत्रिय ब्राह्मण क्यो नही हो सकते? मगर मां से कुछ पूछना बेकार था। हम बच्चे कितने ही सवाल हर रोज़ करते है। भला कितने सवालों के जवाब मिलते हैं? बड़े तो देवताओ की तरह हैं; जी चाहा तो जवाब दे

दिया, न चाहा तो मार-पीट पर उतर आए। सच, इस दुनिया में बच्चों को बड़ी मुसीबत है !

पीपल के पेड़ से चलकर मां मुझे एक चौड़ी पगडण्डी पर ले गई। मुझे मालूम था कि अब हमें कहां जाना है। मैं खुशी से लहराकर पगडण्डी पर दौड़ने लगा। यह एक लम्बी, बल खाती हुई पगडण्डी थी, जो हमारे कसबे से बाहर दूर तक लहराती हुई चली गई थी। दाएं-बाएं धान के खेत आते थे और छोटे-छोटे जंगली दूब के चकत्ते आते थे और ऊंचे-नीचे टीले आते थे। रास्ते में लकड़ी के दो पुल भी पड़ते थे, जिनके नीचे शोर मचाते हुए खतरनाक नाले बहते थे। इन नालों के दोनो तरफ चील के ऊंचे-ऊंचे पेड अपने छत्तर फैलाए खड़े थे। जब तेज़ हवा चलती तब इन पेडों से निकलनेवाली सांय-सांय की आवाज़ से यूं लगता, जैसे कहीं दूर बारिश हो रही हो।

यह रास्ता मुझे सबसे ज्यादा पसन्द था। चुनांचे मां के मना करने पर भी मैं छलागें लगाता हुआ आगे निकल गया। पहले टीले की ओट में बहुत-सी भेड़ें अंजीर के एक पेड के नीचे जमी थीं। अंजीर की एक बड़ी शाखा को झुकाकर एक चरवाहा उसपर सवार था और भूरे रंग की अंजीरें तोड़-तोड़कर अपनी चरवाहिन के मुंह में ठूंसता जाता था। दोनों खुशी के मारे दोहरे हो रहे थे। उन्हें देखकर मैंने सोचा कि आज मैं भी इसी तरह तारां को नाशपाती खिलाऊंगा।

इस ख्याल से खुश होकर मैं आगे ही आगे दौड़ता चला गया। सामने से एक खरगोश ने अपने लम्बे-लम्बे कान उठाकर मुझे देखा, फिर बिदककर जो भागा तो जंगल में पहुंचकर ही दम लिया। गिलहरियां नाचती हुई चकरी के सफेद तनेवाले पेड पर चढ़ गईं। मैं भी उन्हें पकड़ने के लिए उनके पीछे-पीछे पेड़ पर चढ़ गया। मगर वे मुझसे ज्यादा हल्की व फुर्तीली थीं, मेरे काबू में नहीं आईं; ऊंची फुनगी पर बैठकर, अपनी खूबसूरत दुम को मुंह में दबाए, शरीर नज़रों से मेरी तरफ ताकती रहीं। मेरा जी चाहा, काश मैं भी एक गिलहरी होता तो इसी तरह आज़ादी और बेफिक्री से जंगलों में घूमता तथा अखरोट के पेड़ों पर चढ़कर अखरोट कुतर-कुतर खाता। लेकिन मेरे तो माता-पिता हैं, एक बंगला है, चार पांच नौकर हैं। ये सब मेरी हर हरकत पर निगाह रखते हैं। आदमी का बच्चा होना वाकई बड़ी मुसीबत है।

मां ने आकर मुझे चकरी के पेड़ से नीचे उतारा। उसकी सांस फूली हुई थी, चेहरा सुर्ख था। वह बहुत देर तक मुझे मेरी बुरी आदतों पर कोसती रही। लेकिन यह तो बड़े लोगों का कायदा ही है—जरा-सा चलने से इन लोगों के दम फूल जाते हैं। ये लोग गुस्से मे भी बड़ी जल्दी आ जाते है। इन लोगो को गिलहरियो और खरगोशो से कोई दिलचस्पी नही होती ; हमेशा त्यौरी चढाए किसी गहरी सोच में डूबे रहते हैं। अक्सर रातों को मैंने मा को पिताजी से कहते हुए सुना है, अब लड़का बड़ा हो गया है, हमें कुछ बचत करनी चाहिए। मगर मैंने किसी गिलहरी या खरगोश को आज तक बचत करते हुए नही देखा।

पेड़ से उतरकर मैं फिर मां के आगे-आगे चलने लगा। मोड़ से घूमकर हम एक ऊंचे टीले की ओर बढ चले। इस टीले पर बेरियो के घने झाड़ थे, जिनकी शाखो से मैले-कुचैले कपड़ों की सैंकड़ो छोटी-मोटी पोटलियां बंधी हुई थी। यह पीर शाह मुराद का मज़ार था। यहां के पुजारी चाचा रमज़ानी थे। चाचा रमज़ानी का बेटा जहरा मेरा बड़ा पक्का दोस्त था। वह हर पूनम के दिन मेरी राह देखता था। जब मां मज़ार पर नज़र-नियाज़ चढाती, तब हम दोनों दोस्त झाड़ियों के गिर्द 'लुक्कन-मीटी' खेलते और सुर्ख-सुर्ख बेर कांटेदार शाखाओ से तोड़-तोड़कर खाते। बेरियों के हरे-हरे पत्तों के अन्दर छुपी बैठी बुलबुल अपना गीत सुनाती। गिटारियां चीखती थी और मैनाएं मीठे बोल सुनाती थी। सफेद कलगीवाली चम्पई चिड़िया कू-हू-कू, कू-हू-कू की सदा लगाती थी।

मुझे पीर शाह मुराद का मजार बहुत पसन्द था। मुझे जहरे के साथ खेलना भी बहुत पसन्द था। चाचा रमज़ानी भी मुझे बहुत अच्छे लगते थे। इसलिए जब हम लोग मज़ार से नीचे उतर आए तो मैंने खुश होकर अपनी मां से कहा, "मां, मैंने तै कर लिया है कि जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तो मुसलमान बनूंगा।"

मेरी तो समझ मे कुछ नहीं आया कि मैंने कौन-सी ऐसी बुरी बात कह दी, जिसे सुनकर मा एकदम भड़क गई और उसने वही पर मेरे दोनो हाथ पकड़कर मेरे गाल पर ज़ोर से एक थप्पड़ लगा दिया। थप्पड़ इतने ज़ोर का था कि मैं मारे दर्द के रोने लगा और वापसी मे सारे रास्ते रोता रहा। चकरी

पेड पर बैठी हुई गिलहरी ने मुझे रोते हुए देखा, खरगोश ने मुझे रोते देखा, अंजीर खाते हुए चरवाहे और चरवाहिन ने मुझे रोते हुए देखा। मेरी मां ने मुझे बहुत चुप कराना चाहा, लेकिन मै ढीठ बनकर रोता ही रहा, ताकि सारी दुनिया देख ले कि मै रो रहा हूं ; मेरी मां ने मुझे मारा है और मैं रो रहा हूं। मैं रो रहा हूं और मैं गिलहरी बन गया हूं। मेरी मां मुझे चारों ओर ढूंढ रही है। मै खरगोश बनकर छुप गया हूं और मेरी मां पागलो की तरह जंगल-जगल घूम रही है। मैं बेरियो के झुण्ड में बुलबुल वन गया हूं और मेरी मां निराश होकर मजार के चक्कर काट रही है। अपनी मां की यह दुर्दशा देख-कर मेरे दिल में उसके लिए दया आ गई, इसपर मैं और भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा और उस वक्त तक रोता रहा, जब तक वापस बगले में पहुंचकर पिताजी ने मुझे प्यार नही कर लिया और मुझे बाग मे खेलने के लिए छुट्टी नही दे दी।

मैं चाहता भी यही था। एक क्षण में मेरे आंसू सूख गए, मैं दौड़ता हुआ अपने बडे बाग के उस कोने में चला गया, जहां लोहे की बड़ी-बड़ी मेहराबदार जालियों पर अंगूर की बेलें लदी थी और उनके चारों तरफ लकडी के जंगले पर बोगन वैलिया के सुर्ख और शरीर फूल चमक रहे थे। लोहे की इन मेहरावदार जालियों के पीछे छुपी हुई तारा यही कहीं मेरा इन्तज़ार कर रही थी। मैं उसे आवाज़ें देता हुआ इधर-उधर ढूंढने लगा। आखिरकार वह एक मेहराब के ऊपर चढी, अंगूर की बेलों मे छुपी ऊदे-ऊदे अंगूर खाती हुई मुझे मिल गई। मैंने उसे टांग से पकड़कर घसीटा और उसे नीचे गिरा लिया और उसका मुह खोलकर उसमे अगूर के दाने डालने लगा।

तारा बोली, "यह क्या कर रहे हो तुम ? हटो !"

मैं परे हट गया और उससे बोला, "वह चरवाहा और चरवाहिन इसी तरह एक-दूसरे के मुंह मे अंजीर रखकर खाते थे।"

"तो एक-दूसरे की गर्दन पर चढकर थोड़े ही खाते है, पगले।"

"अच्छा तो मैं तुमको खिलाता हू, तुम मुझको खिलाओ।"

"नही, पहले तुम खिलाओ," तारा बोली।

"नही पहले तुम", मैंने जिद की।

"अच्छा, इक्कड़-दुक्कड़ कर लेते हैं," तारा बोली।

यह कहते ही वह एक उंगली से मेरी छाती को छूकर और फिर अपनी छाती को छूते हुए बोली, "इक्कड़-दुक्कड़ भम्मा भौ, अस्सी-नब्बे पूरे सौ! तुम!...आहा जी! तुम हमें अंगूर खिलाओगे!"

मैंने ऊपर मेहराबदार जालियों को देखा, और फिर सबसे अच्छे अंगूर का एक गुच्छा तोड़ लाया और एक-एक दाना करके तारा के मुह मे डालने लगा। फिर इक्कड़-दुक्कड़ गिनने लगा, "इक्कड़-दुक्कड़ भम्मा भौ, अस्सी-नब्बे पूरे सौ! ...लो, अब तुम खिलाओ!"

एकाएक तारां मुझसे अंगूरों का गुच्छा छीनकर भाग निकली। वह भागती जाती थी और चीखती जाती थी, "नही खिलाते! नहीं खिलाते! नही खिलाते, जी!"

वह आगे-आगे भाग रही थी और मैं चीखता-चिल्लाता उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था। इस तरह भागते-भागते हम दोनों को यह खयाल तक न रहा कि हम कहां आ गए हैं। एकाएक हम दोनो बगले के बरामदे में खड़े हांफ रहे थे। मेरी मां ने आकर तारां को पकड लिया और उसे ज़ोर-ज़ोर से तमाचे और मुक्के मार-मारकर कह रही थी, "कम्बख्त! कमीनी अछूत! कमजात लड़की! आज पूर्णमासी के शुभ दिन पर मेरे बच्चे के साथ खेलती है, जभी तो वह अच्छा नही होता! देख तो सही, आज मैं तेरी हड्डी-पसली बराबर करके रहूंगी!"

मेरी मां सचमुच इतने गुस्से में थी कि अगर मेरे पिताजी तारा की मदद करने को न आते तो वह जरूर उसकी हड्डियां तोड़ डालती। पिताजी ने रोती हुई तारां को अपनी गोद में उठा लिया और उसे बाग में ले गए और उसकी झोली लाल-लाल सेबों से भर दी। उन खूबसूरत सेबों को देखकर रोती हुई तारां सारी मार भूल गई और अपने आंसुओ मे मुस्कराने लगी। फिर पिताजी ने मां से कहा, "खबरदार जो आयन्दा तुमने मेरे बेटे को तारां से खेलने से मना किया!"

"तारां अछूत है! वह चमार की बेटी है!"

"चमार की बेटी है तो क्या हुआ? इन्सान नही है?"

"तुम अपने धर्म को अपने पास रखो! मैं अपने बेटे को तुम्हारी तरह नास्तिक नही बनने दूगी। क्यो मेरे लाल," मेरी मां मुझे पुचकारते हुए बोली,

"तू मेरा बेटा है न ?"

मैंने डरते-डरते कहा, "हां !" मगर मेरी नज़रें तारां की झोली में भरे हुए सेवों पर लगी थीं।

"तू मेरी बात मानेगा न ?" मां मुझसे पूछने लगी।

"हा," मैंने आहिस्ता से जवाब दिया, मगर मेरी नजर में वही लाल-लाल सेब मचल रहे थे।

"अच्छा बता, तुझे कौन-सा धर्म पसन्द है, मेरा या अपने पिता का धर्म ?"

मैंने पिताजी को देखा, फिर मां को देखा और फिर तारां को देखा जिसकी झोली मे सेब भरे हुए थे।

"मुझे वे सेब पसन्द है," मैंने झिझकते-झिझकते कहा।

पिताजी ज़ोर से हंसने लगे।

मां ने तानकर एक थप्पड़ दिया और गुस्से से बोली, "बता, तुझे कौन-सा धर्म पसन्द है ? मेरा या अपने पिता का ?"

मैंने रोते-रोते एक उंगली उठाकर फिर कहा, "मुझे वे सेब पसन्द है।"

बहुत समय बीत चुका, जब यह घटना घटी थी। जीवन के पुल के नीचे से पानी कितनी तेज़ी से बह रहा है। चालीस साल से मैंने किसी सेब की शाख पर एक कली को भी खिलते हुए नही देखा। घुटी-घुटी आशाओं, अपूर्ण इच्छाओ, बेरहम खुदगर्ज़ियों के अंधेरे व टेढे-मेढे रास्तो से गुज़रता हुआ मैं ज़िन्दगी के जेलखाने की इन सलाखों से पीछे की तरफ जब भी झांकता हूं, तब मुझे अपनी कल्पना मे वही आठ वर्षीय बालक दिखाई देता है, जिसकी मां उसे तमाचे-पर-तमाचे मारकर पूछ रही हैं, बता तुझे कौन-सा धर्म पसन्द है ? और वह बालक तमाचे खा-खाकर भी हठीले अन्दाज मे लाल-लाल सेबो की तरफ उंगली उठाकर कहता है, "मुझे वे सेब पसन्द हैं ! मुझे वे सेब पसन्द हैं !"

अगर हमारे बचपन के ये सेब हमारी ज़िन्दगी के रहबर (पथ-प्रदर्शक) होते तो आज यह दुनिया कितनी मुख्तलिफ होती !

काश !

ट्राउट मछली

जब से मांजी मायके गई थी, मेरे पिताजी बड़े खुश थे, क्योंकि मेरी मां ने पांच साल के बाद मायके जाने का नाम लिया था।

"और इतना अरसा साथ रहने से आदमी ऊब जाता है", पिताजी सरदार कृपालसिंह माल मंत्री से कह रहे थे, "यानी जब देखिए, मर्द-औरत एकसाथ जोंक की तरह चिपटे हुए हैं। कभी हटने का नाम ही नही लेते। इतने अरसे तक अगर भगवान भी मेरे साथ रहे, तो मुझे उससे नफरत हो जाए, औरत तो फिर औरत है।"

"वाह ! क्या बात करते हो ?" सरदार कृपालसिंह भड़ककर बोले, "मेरी घरवाली तो इक्कीस साल से मायके नही गई। हमारा जी तो कभी एक-दूसरे से नही ऊबता।"

"आपकी बात दूसरी है, सरदारजी", मेरे पिता बोले, "आप मशीरेमाल हैं। आपको महीने मे बीस दिन बाहर इलाके मे दौरे पर रहना पड़ता है। अपने-आप महीने मे बीस दिन बीवी से अलहदगी हो जाती है। बीस दिन के बाद घर आना कितना अच्छा लगता होगा। यहां तो हर रोज़ ही घर पर रहना पड़ता है। अब देखिए, बीवी अपने मायके गई है, तो यह घर कितना अच्छा मालूम होता है। मैं अपने-आपको कितना आज़ाद और बेफिक्र महसूस कर रहा हूं। तीन-चार महीने के बाद बीवी की याद सताने लगेगी। तब उसका आना कितना अच्छा लगेगा। मेरे खयाल में तो औरतों को ज़बरदस्ती तीन महीने के लिए मायके भेज देना चाहिए। राजा साहब को इसके लिए एक कानून बना देना चाहिए।"

सरदार कृपालसिंह बोले, "राजा साहब का बस चले, तो अपने महल की

सारी रानियों को ज़िन्दगी-भर के लिए मायके भेज दें, और फिर अपना हरम नई रानियों से सजा लें। पर इस किस्म की बातें बस राजाओं को ही शोभा देती हैं। कर्तार की मां कह रही थीं, कि तुम जाकर एक दिन उनको घर पर खाने के लिए बुला लो। इसीलिए मैं आया था।"

"लेकिन मैं तो कल करमान के ढाके पर जा रहा हूं।"

"ट्राउट मछली के शिकार के लिए?" कृपालसिंह ने आश्चर्य और प्रसन्नता का मिला-जुला प्रदर्शन करते हुए हसरत के साथ पूछा।

"हां। आप भी चलिए न।" पिताजी ने दावत दे दी।

"नहीं, भाई। मैं कहां जा सकता हूं। अभी तो दौरे से लौटा हूं। कितने दिन रहेंगे आप वहां पर?"

"एक हफ्ता तो रहूंगा ही। और अगर जी लग गया, तो दस दिन रह जाऊंगा।"

"अच्छा, तो मैं चलता हूं। पर करमान से वापसी पर एक दिन हमारे घर पर जरूर बैठक होगी, नहीं तो तुम्हारी भाभी बहुत खफा होंगी।"

"भाभीजी को मेरी तरफ से हाथ जोड़कर 'सत श्री अकाल' कहना भैया। मैं आते ही खुद खबर कर दूंगा।"

सरदार कृपालसिंह के जाने के बाद मैं खुशी से उछलने और नाचने लगा, और तालियां बजा-बजाकर कहने लगा "आहा, जी, हम करमान जाएंगे, ट्राउट मछली के शिकार को जाएंगे!"

दरअसल मैं मां के साथ चला गया होता, यदि पिताजी ने चुपके से मुझे ट्राउट मछली के शिकार का लालच न दिया होता। और करमान, सुना है, बहुत खूबसूरत जगह है। वहां छः हज़ार फुट की ऊंचाई पर अशमा नाम की एक झील है, जो दो मील लम्बी-चौड़ी है। वहां पर राजा साहब का एक डाकबंगला भी है। बड़ी ही सुन्दर जगह है।

"अगर तुम रह जाओगे, तो हम तुम्हें करमान ले चलेंगे", पिताजी ने मुझसे वायदा किया था। और उस वायदे के लालच में मैंने मांजी के साथ ननिहाल जाने से इनकार कर दिया था। "मैं तो पिताजी के साथ रहूंगा," मैंने ज़िद करके कहा था।

माजी ने मुझे बैट्री से चलनेवाली खिलौना मोटर ले देने का वायदा किया

था। पर चाबी से चलनेवाली मोटरें तो मेरे पास दो-दो थीं, इसलिए बैट्री से चलनेवाली मोटर का लालच मुझे इतना प्रभावित न कर सका, कि मैं उसके लिए करमान की सैर का त्याग कर सकता। हा, यदि वे मुझे बडे शहर मे ले जाकर चिड़ियाघर दिखाने का वायदा करें, तो मैं···मैंने बड़ी गम्भीरता से मा से सौदाबाजी शुरू कर दी।

"तो रहो अपने पिताजी के पास", मांजी झुंझलाकर बोली, "मैं कहां तुम्हें अपने साथ ले जाने पर खुश हूं? यहां रहकर तुम अपने पिताजी को तंग ही करोगे। और क्या करोगे? क्या मैं जानती नही?"

"नही, मैं तंग नही करूंगा", मैंने कहा।

"नहीं, यह तंग नही करेगा", पिताजी बोले।

"जब तुम दोनों बाप-बेटे की सलाह एक जैसी है, तो मैं दखल देनेवाली कौन?" मांजी अकेली पड गईं, और रुआसी होकर बोली।

उस समय मुझे मांजी पर बड़ा प्यार आया, और मैं अपने पिताजी की गोद से निकलकर मांजी की गोद में चला गया, और उनसे लाड करते हुए बोला, "मैं पिताजी के साथ नही रहूंगा। मै तो तुम्हारे साथ चलूगा—अपने नानाजी के घर। आहा, जी, अपने नानाजी के घर, अपने नानाजी के घर!" मैं खुशी से ताली बजाने लगा।

माजी ने अपने आंसू पोछ लिए, और खुशी से चमकती हुई आंखों से पिताजी की तरफ देखकर बोली, "मेरा राजा बेटा! तू मेरा राजा बेटा है। तू मेरे साथ जाएगा। तू मेरे साथ जाएगा।"

माजी के स्वर मे विजय की चमक थी। पिताजी उठकर बाहर चले गए।

लेकिन जब जाने के लिए तैयारिया पूरी हो चुकी, और मैंने मखमल का ऊदा कोट और निकर पहन लिया, और पाव में ब्राउन रंग के चमकते हुए जूते पहन लिए, और जब मांजी पूजा के कमरे में आखिरी बार माथा टेकने के लिए गईं, तो पिताजी धीरे से मेरे कान में बोले, "मैंने सोचा था, कि तुमको करमान ले चलूंगा।"

"करमान मे चिड़ियाघर है?"

"नही।"

"करमान मे बिजली की बैट्री मोटर है?"

"नहीं।"

"फिर ?"

पिताजी धीरे से बोले, "मैं सोच रहा था, कि हम तीनों मछलियों का शिकार करते—तुम, मैं और तारां।"

"तारां हमारे साथ चल सकती है ?" मैंने एकदम चिल्लाकर कहा।

"शश्श ! चुप रहो", पिताजी तुरन्त मुंह पर उंगली रखकर बोले, "तुम्हारी मां सुन लेगी, तो तुम्हे ज़बरदस्ती अपने मायके ले जाएगी। अगर तुम यहां रहने का वायदा करो, तो मैं तारां को भी ले चलू।"

मैंने बड़ी कठिनाई से अपनी प्रसन्नता को छिपाने का प्रयास किया। लेकिन फिर भी मेरे होठो के किनारे हसी से फटे पड़ रहे थे, और मेरी आंखो की चमक मन का भेद खोले दे रही थी। जब मांजी पूजा के कमरे से लौटी, तो मैंने उनसे ठुनककर कहा, "नही, हम नानाजी के पास न जाएंगे। हम पिताजी के पास रहेगे।"

मां ने मेरी तरफ देखा, फिर घूरकर पिताजी की तरफ देखा।

पिताजी ने अपनी आंखें झुका ली।

"तुमने इससे कुछ कहा है ?"

"नहीं।"

"ज़रूर कुछ कहा है। वरना यह ऐन चलते वक्त कैसे पलट गया ?"

"हम नानाजी के पास नही जाएंगे", मैं ठुनक-ठुनककर कह रहा था।

पिताजी बोले, "मैंने कुछ नही कहा। कसम ले लो।"

"हम नही जाएंगे, हम नही जाएंगे, हम नही जाएंगे", मैंने रटी हुई सुहारनी की तरह बार-बार कहना शुरू किया।

मांजी ने गुस्से से झुझलाकर मुझे मारने के लिए हाथ उठाया, कि पिताजी ने आगे बढ़कर रोक लिया, और बडे विनम्र स्वर में बोले, "रानो, तू भी जा रही है, और बच्चे को भी ले जा रही है। एक तो तेरे ही जाने से मन उदास है।...अब बच्चे को भी साथ ले गई, तो जुदाई के ये दिन काटने मुश्किल हो जाएगे।" पिता की आवाज़ भर्रा गई।

यकायक मां का सारा क्रोध शांत हो गया। वह एकदम मेरी तरफ से पलटकर पिताजी के पास चली गई, और उनके सीने से लगकर बड़े विनम्र स्वर

में बोलीं, "तो तुमने मुझसे पहले ही क्यों नहीं कह दिया ? मैं इतनी ज़िद न करती। अगर तुम कहो, तो मैं मायके न जाऊं।"

"नहीं, नहीं", पिताजी घबराकर जल्दी-जल्दी बोले, "ऐसा नहीं है। मैं ऐसा संगदिल नहीं हूं, कि पांच बरस के बाद तुम्हे मायके न जाने दूं। आखिर क्या मैं इनसान नहीं हूं ? क्या मैं औरत के मन को नहीं समझता ? आखिर तुम्हारा दिल भी तो अपनी मां, अपने पिता, अपने भाई-बहनो से मिलने को चाहता होगा। नहीं, नहीं। मैं किसी न किसी तरह तुम्हारे वियोग के दिन काट लूंगा।"

माजी एकदम प्रसन्न होकर बोली, "मैं बच्चे को तुम्हारे पास छोड़े जाती हूं। मगर काके का खयाल रखना।"

"मेरा अपना बच्चा है।"

"लाल शर्बत हर रोज़ पिलाना।"

"रोज़ पिलाऊंगा।"

"और कैल्शियम की गोलियां भी।"

"अच्छा।"

"और खाने के बाद फौलाद का शर्बत।"

"ठीक है।"

"और बाहर सर्दी में न घूमने देना।"

"बहुत अच्छा।"

"और तारां कलमुंही के साथ खेलने न देना। उस कमबख्त के सर में जू ही जूं हैं। मेरे बच्चे के बालों मे जू पड़ जाएंगी।

"मैं उस सुअर की बच्ची को बंगले के नज़दीक न फटकने दूगा", मेरे पिता ने गरजकर कहा।

मेरी मांजी ने पिताजी से लगे-लगे इतमीनान की सांस ली, और उनके चौड़े-चकले सीने पर आहिस्ता से उंगलियां फेरते हुए बोली, "तुम कितने अच्छे हो !"

माजी के जाने के आठ दिन बाद हम लोग करमान के ढाके को रवाना हुए। जाने से पहले पिताजी ने तारां की मां और उसके बाप से तारां को अपने साथ ले जाने की अनुमति ले ली थी। उसके लिए कपड़ो के दो नये जोड़े सिलवाए

थे—गहरी सुर्ख सूती की दो नई सलवारें और एक काली छींट और दूसरी नीली फूलदार छीट की कमीज़, और उनके साथ ओढ़ने के लिए गुलाबी और नीली चुन्नी। और एक दिन पहले हमारी नौकरानी बेगमां ने उसे अच्छी तरह नहलाकर, उसके बालों की सारी जूं मार दी, और उसके बालों मे खुशबूदार फूल डालकर उसकी चोटियां सवारीं। और अब तारां अपने नये लिबास में अकड़ी हुई अकेली एक खच्चर पर बैठी, मेरी तरफ इस तरह देख रही थी, जैसे मैं चमार का बेटा हूं, और वह राजा की बेटी है। मुझे गुस्सा तो बहुत आया, और मैं उसे पीट भी देता, पर पिताजी का डर था, क्योंकि पिताजी उससे बड़ी नर्मी से बात करते थे। रास्ते मे अगर हम कुछ खाने को मागते तो पहले वे उसे देते, उसके बाद मुझे। और जब वह और मैं सफर मे खच्चरों पर बैठे-बैठे थक जाते, और हमारे पाव में चीटिया-सी रेंगने लगती, तो पिताजी पहले तारां को खच्चर से उतारते, और बाद में मुझे। फिर एक हाथ से तारा की उंगली पकड़ लेते और दूसरे हाथ की उंगली मुझे थमा देते, और ज्यादा देर तारां से बातें करते रहते। सो तारां मारे घमण्ड के फूलकर कुप्पा हुई जा रही थी। और मैंने मन मे निश्चय कर लिया था, कि करमान पहुंचकर तारां को ज़रूर-ज़रूर पीटूंगा। जितना मेरे पिता-जी उससे हंस-हंसकर बात करते थे, उतनी ही मुझे उससे नफरत होती जा रही थी। मेरे खयाल मे मा ठीक कहती थी। यह चुड़ैल है ही बड़ी खराब। देखो तो, पिताजी की किसी बात पर कैसे ठी-ठी हंस रही है! मरजानी। गन्दी! चमारिन!

अचानक मेरे खच्चर को ठोकर लगी, और मैं ज़ीन से उचककर खच्चर की गर्दन पर आ रहा। खच्चरवाले ने झट आगे बढ़कर मुझे संभाला, नहीं तो मैं गिर गया होता। तारां हंस-हंसकर मुझे चिढ़ाने लगी।

दिन ढलने से पहले हम लोग करमान के ढाके पर पहुंच गए। यहां पर बहुत सर्दी थी। बहुत तेज़ हवा चल रही थी। छः हज़ार फुट की चोटी पर एक बहुत लम्बा-चौड़ा मैदान फैला हुआ था, जिसका चप्पा-चप्पा नर्म-नर्म और हरी-हरी घास से भरा हुआ था। उस मैदान मे बकरवालो के गल्ले चर रहे थे। मैदान के बीचोबीच नीचाई मे असमां झील थी। झील का पानी पश्चिमी किनारे को तोड़कर एक नदी मे बह रहा था। नीले पानीवाली नदी छोटे-छोटे नीले पत्थरो पर शोर मचाती हुई बह रही थी। इसी नदी मे मेरे पिताजी ट्राउट

मछली का शिकार खेलने आए थे। नदी के किनारे, जहां नदी झील से अलग होती थी, वहां पर राजा साहब का डाकबंगला था। और दस-बारह सीढ़ियों का एक छोटा-सा घाट था, जिसके किनारे दो किश्तियां बंधी हुई थी। डाकबंगले के पीछे तुंग का एक वहुत बडा दरख्त था। और इसी तरह के चार-पांच दरख्त नदी के किनारे-किनारे दूर-दूर खड़े थे। और वे इतने वडे-बड़े दरख्त थे, और इतने घने थे कि उनके नीचे वकरवालो ने अपने खेमे लगाए थे। और खेमो से बाहर चूल्हों मे आग जल रही थी, और वकरवाल औरतें अपने सिर के दोनों तरफ बालो की अनगिनत चोटियां लटकाए, कानो मे चादी की वड़ी-वड़ी वालियां पहने, मक्की की रोटिया सेंक रही थी। यह दृश्य मुझे बड़ा अजीब और बड़ा अच्छा लगा।

डाकवंगले के निकट पहुंचकर, हम लोग अपनी सवारी के खच्चरों से उतरे। हमारे पास सवारी के तीन खच्चर थे। दूसरे खच्चरों पर खेमे, छोलदारियां और खाने-पीने का सामान लदा था। दो अर्दली और दो नौकर मिलकर डाकबंगले के वाहर लकड़ी के खूटे ठोककर खेमे और छोलदारियां खड़ी करने लगे। और हम तीनो चौकीदार के सलाम का जवाव देकर डाकवंगले मे दाखिल हो गए।

फिर वहुत जल्दी सूरज डूब गया, और खिडकियों के पर्दे तेज़ हवा से कापने लगे, और साय-सांय करते हवा खिड़की के कांचों से टकराने लगी, और खिड़कियो को खड़खडाने लगी। पिताजी ने उठकर खिड़कियां वन्द की, अंगीठी में आग जलवाई, विस्तर विछवाए, और हम लोगो को अपने साथ बिठाकर खाना खिलाया। वे वारी-बारी से कभी मेरे मुंह में और कभी तारां के मुह में कौर डालते जाते थे। और हमे इस तरह खाने में बडा मजा आ रहा था। फिर मेरे पिताजी ने हम दोनो को गोद मे लेकर, एक बहुत अच्छी परियोंवाली कहानी सुनाई। और जब कहानी सुनते-सुनते हमे नीद आने लगी, तो उन्होंने हम दोनो को उठाकर साथवाले बिस्तर पर लिटा दिया। तारां का छोटा-सा हाथ मेरी गर्दन पर था, और वह मेरे विलकुल करीव लगकर सो गई थी। फिर मैं भी सो गया, और एक नम-गर्म अन्धेरे ने हमे अपनी गोद में ले लिया।

उसके वाद मैं वहुत जगहों पर घूमा हूं और बड़े सुन्दर दृश्य देखे हैं, और

बहुत-से दूसरे देशो की सैर की है। पर ऐसी मीठी, मासूम और मोहिनी शाम मेरी ज़िन्दगी मे कभी नही आई। आज भी कई बार जब मैं किसी अनजाने सफर पर चलता हुआ, किसी अजनबी सराय के कमरे मे अकेला सोता हूं, तो मुझे अपनी गर्दन पर तारां का छोटा-सा हाथ रखा हुआ महसूस होता है, और अचानक मैं सोते से घबराकर उठ बैठता हूं, और अपने खाली बिस्तर को देखकर हैरान और उदास हो जाता हूं। और मेरे चारों तरफ तेज हवा घूमती है, और बन्द खिड़कियो को दस्तक देते हुए लड़खड़ाती है। और मै सोचता हूं कि न जाने वे नन्हे-नन्हे हाथ आज कहां हैं, न जाने उन्होने अपने लिए कौन साथी चुन लिया है, न जाने वह आज किसके बच्चे को पालने मे झुला रही होगी? और उन हाथों का मेरी गर्दन से क्या रिश्ता है, यह मै आज तक न जान सका।

दूसरे दिन सुबह जब हम उठे, तो पिताजी अपने बिस्तर पर नही थे। कमरे की खिड़कियां खुली हुई थी और खिड़कियो के पर्दे हौले-हौले हिल रहे थे। सुबह की सुहानी धूप हमारे बिस्तर पर पड़ रही थी। खानसामा ने हमें बिस्तर ही मे नाश्ता दे दिया। और तारां ने इस तरह खाया, मानो वह जिन्दगी-भर भूखी रही हो। इसके बाद एक अर्दली ने हमको बारी-बारी से गर्म पानी से नहलाया, और सफर के कपडे उतारकर, नये कपडे पहनाए। फिर मैंने अपने बक्स में से रबड़ की एक गेद निकाली, और हम कूदते-फांदते नदी की ओर चल दिए, जिधर सुबह से ही पिताजी मछली के शिकार के लिए गए थे।

गेद घास पर फिसलती जा रही थी, और मैं और तारां उसके पीछे खुशी से चीखते-चिल्लाते दौड़ते चले जा रहे थे। घास बहुत गहरी और तहदार थी। चलते वक्त ऐसा लगता था, जैसे उस घास के नीचे सोफे के स्प्रिंग लगे हों। दौड़ते-दौड़ते एक जगह अंजों के नीले-नीले फूलों के तख्ते नज़र आ गए, और उन्हे देखकर मैंने तारां को फूलो पर गिरा दिया, और फिर स्वयं भी फूलों पर लोटने लगा। हम दोनो लोटते-लोटते फूलों के तख्ते से बाहर निकल आए, और उसी तरह घास पर लोटते-लोटते दूर तक चक्कर खाते चले गए। अब हमारी नज़रों में ज़मीन और आसमान घूम रहे थे। तुंग के पेड़ दृष्टि-सीमा पर यकायक ऊंचे होकर डुबकनी खा जाते थे। आसमान घूमकर तैरती हुई नदी मे मिल जाता था। और नदी उछलकर फूलों के तख्तों में जा गिरती थी। और उन

सबके ऊपर धूप की सुनहरी फुहार-सी गिर रही थी।

लोटते-पोटते जब हम नर्गिस के फूलों के एक बहुत बड़े तख्ते की तरफ जाने लगे, क्योंकि हमारी गेंद भी उधर ही गई थी, तो हमने यह देखा कि यकायक नर्गिस के फूलों के तख्तों को फलांगता हुआ, एक काला कुत्ता कहीं से आया, और गेंद को अपने मुह मे लेकर भागा, और आंख झपकते ही नर्गिस के फूलों की दूसरी तरफ ओझल हो गया।

जहां से कुत्ता गुज़रा था, वहां पर लम्बी-लम्बी डंडियों पर नर्गिस के फूल अभी तक सो रहे थे, और उनकी आंखें बिलकुल उदास थी, जैसे उन्हें भी हमारी गेंद के खो जाने का दुःख हो।

मैंने तारा की तरफ देखा। तारा ने मेरी तरफ देखा। फिर हम दोनों जल्दी घास पर से उठ बैठे, और धीरे-धीरे हाथ पकड़कर नर्गिस के तख्ते के दूसरी तरफ जाने लगे, जिधर कुत्ता गया था। पर हमारे दिलो मे डर था, क्योंकि वह एक सियाह काला कुत्ता था, और बहुत बड़ा कुत्ता था।

फूलो के तख्ते की दूसरी ओर यकायक नदी का किनारा नज़र आया। किनारे पर एक आदमी बैठा था, और कुत्ते के मुह से गेंद निकालकर बड़े गौर से देख रहा था। लाल, पीले और हरे तीन रंगोवाली मेरी रबड़ की खूबसूरत गेंद थी, जो अब उसके हाथ मे थी। और उसके निकट खड़ा हुआ कुत्ता हमारी तरफ देखकर शरारत से भूंक रहा था।

वह आदमी हम दोनो बच्चो को देखकर खड़ा हो गया। उसने अपने कुत्ते को डांटा, "चुप रह, कालू!"

कुत्ता चुप हो गया, और दुम हिलाने लगा।

वह बड़ा अजीब-सा आदमी था। कमर तक बिलकुल नंगा था, और कमर के नीचे उसने काले पट्टू का एक चुस्त पाजामा पहन रखा था जो सिर्फ उसके घुटनों तक आता था। घुटनो से नीचे वह फिर नंगा था। उसके कंधे पर से कमर तक जनेऊ का धागा लटक रहा था और उसका रंग बेहद सफेद था, और उसकी आंखें बहुत नीली थी, और उसके चेहरे पर सुर्ख रंग की छोटी-सी दाढ़ी थी। और जब वह गेंद को अपने हाथ में टटोलता हुआ हमारी तरफ देखकर मुस्कराया, तो मेरा सारा डर जाता रहा।

मैंने कहा, "यह मेरी गेंद है। मुझे दे दो।"

गेंद उसके हाथों से फिसलकर नीचे आ रही। नीचे आते ही गेंद दो-तीन बार उछली। तीसरी बार कुत्ते ने फिर उसे पकड़ लिया। गेद को अपने-आप उछलते देखकर, वह आदमी बेहद हंसा। जैसे ज़िन्दगी में पहली बार रबड़ की गेंद देख रहा हो।

"मेरी गेद मुझे दे दो", मैने आदेश-भरे स्वर मे कहा।

उसने घबराकर तुरन्त गेंद मेरी ओर फेंकी। मैंने झट दबोच ली।

वह बडे आश्चर्य से उस गेद की तरफ देखते हुए बोला, "यह किस चीज की बनी है?"

"रबड़ की।"

"रबड़ क्या होता है?"

"रबड़ तुम्हारा सिर होता है!" मैंने बड़े घमण्ड से कहा।

"तुम डाक्टर साहब के लडके हो?" उस आदमी ने बडी नम्रता से पूछा।

मैंने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिला दिया, और उससे पूछा, "पिताजी कहां है?"

वह बोला, "वह, मैदान के किनारे पर, जहां तुंग का आखिरी पेड़ दिखाई देता है न, वहां वे मछली का शिकार कर रहे है।"

"नज़र तो नही आते," मैंने दूर उस तुग के पेड़ की ओर नजर दौडाकर कहा।

"वे पेड़ के दूसरी तरफ है। चलो, मैं तुम्हें वहां पहुंचाए देता हूं।"

इतना कहकर, उसने झुककर नदी-किनारे रखा हुआ लकड़ियो का एक गट्ठा उठाया, और उसे सिर पर रखकर हमारे साथ-साथ चलने लगा।

बहुत जल्द भागते-दौड़ते हम उस आदमी से बहुत पहले ही अपने पिताजी के पास पहुंच गए। वे पेड़ के तने से टेक लगाए, अपनी विलायती बसी की डोर को पानी में डाले, अधमुंदी आंखो से नदी की तरफ देख रहे थे। देख रहे थे, या सो रहे थे? हमें तो यही लगा कि सो रहे थे, क्योकि हमारे पहुंचने पर वे एकदम चौंक गए, और हमारी तरफ देखकर, और हमें पहचानकर कुछ खीझकर बोले, "तुम आ गए न। अब शिकार हो चुका।"

"क्यो न होगा?" मैंने पूछा।

"तुम्हारे शोर से मछलिया सावधान हो गई है।"

मैंने नीचे पानी में मछलियों की तरफ देखा। जहां पर पानी गहरा न था, वहा वे दिखाई देती थीं, और तह की धुली हुई स्वच्छ वजरी और रेत भी। तुग के पत्तो से धूप छन-छनाकर पानी में पड़ रही थी। मछलियां उस रोशनी मे कही तो चमक उठती, कही गहरे सायो में खो जाती। कहीं पर वे दो-दो, तीन-तीन की तादाद में लचकती हुई चली जा रही थी। एक जगह बड़े नीले-से पत्थर के गिर्द दो मछलियां घूम रही थीं। यकायक वे दोनों मछलियां पत्थर के नीचे गुम हो गईं।

मेरे मुंह से अनायास निकला, "ये मछलियां कहां गईं ?"

"उस पत्थर के नीचे उनका घर है। नीचे पत्थर की छत है। छत के नीचे साफ रेत का खूबसूरत बिस्तर है। दिन-भर ये इसी पानी में तैरती हैं। इसी पानी से उन्हें अपना भोजन भी मिल जाता है।"

तारां ने अपने दोनो हाथ जोड़कर कहा, "हाय, मेरा जी चाहता है, कि मैं भी एक मछली होती, और इसी तरह पानी में तैरती-तैरती कही बहुत दूर चली जाती !"

मेरे पिताजी कुछ कहनेवाले थे, कि इतने मे कालू और उसका मालिक आ गया। और उस गोरे-चिट्टे अधनंगे आदमी ने, जिसके सिर पर लकड़ियों का गट्ठा था, आकर मेरे बाप को सलाम किया। पिताजी ने उसके जनेऊ की तरफ देखकर कहा, "तुम ब्राह्मण हो ?"

"जी।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"डोला।"

"कुत्ता क्या तुम्हारा है ?"

"जी।"

"तुम क्या काम करते हो ?"

"जब डाकबंगले में कोई अफसर आता है, तो नीचे जंगल से लकड़ी काट-कर लाता हू।"

"और जब कोई अफसर नही आता ?"

"तो यही लकड़ी बकरवाल लोगो के हाथ बेचता हूं।"

"और जब इस ढाके की घास सूख जाती है, और बकरवाल लोग दूसरे ढोक

में निकल जाते हैं, तब तुम क्या करते हो ?"

डोला ने मैदान के नीचे की तरफ ढलवान की ओर इशारा करते हुए कहा, "वे घर आप देख रहे हैं न ? उस घर के आसपास की सारी ज़मीन मेरी है। नदी बहुत-सी ज़मीन बहा ले गई। लेकिन जो बच गई है, उसमें खेती-बाड़ी करता हूं।"

"इस पहाड़ी पथरीली ज़मीन में क्या होता होगा ?"

"मक्का उगाता हूं।"

मेरे पिताजी चुप हो गए। वे सिर झुकाकर, बंसी की डोर लपेटने लगे। कुछ देर वह आदमी उसी तरह हमारे सिर पर खड़ा रहा, फिर पलटकर अपने घर की तरफ चला गया।

मेरे पिताजी ने मुझसे पूछा, "काका, तुमने किसी किसान का घर देखा है ?"

"नहीं, पिताजी।"

"चलो, तुम्हें दिखाएं।"

मैंने डोला का घर देखा। मिट्टी की चार दीवारें थीं। मिट्टी की छत थी, जिसमें संथे की झाडियां कूट-कूटकर बिछाई गई थीं। घर में कोई खिड़की न थी, सिर्फ एक दरवाज़ा था। एक अंधेरे कोने में एक चूल्हा था। उसपर नीले पत्थर का तराशा हुआ एक टुकड़ा औंधा पड़ा था, जिसे पहाड़ी भाषा में 'तराड़' कहते हैं।

मेरे पिताजी ने पूछा, "वह तराड़ किसलिए है ?"

डोला बोला, "यह तराड़ नहीं है, तवा है।"

"पत्थर का तवा ?" मेरे पिताजी आश्चर्य से बोले।

डोला ने धीरे से सिर हिलाया। बोला, "इसपर रोटी पकाता हूं।"

"इसपर रोटी पक जाती है ?" तारा ने आश्चर्य से पूछा।

"देर में पकती है, लेकिन पक जाती है", डोला ने जवाब दिया।

मेरे पिताजी ने मेरी तरफ देखकर कहा, "देखा तुमने किसान का घर ?"

मैंने कहा, "मगर इसमें तो कुछ भी नहीं है।"

"बेटे, किसान का घर इस बात से नहीं पहचाना जाता कि उसमें क्या है, बल्कि इस बात से कि उसमें क्या नहीं है।"

मैं कुछ कहने ही वाला था, कि इतने में कुत्ते के ज़ोर-ज़ोर से भूंकने की

आवाज़ बाहर से आई।

हम सब लोग जल्दी से बाहर निकले। हमने देखा कि जिस दीवार के नीचे डोला ने अपनी लकड़ी का गट्ठा गिराया था, वहां पर अब एक लड़की खड़ी थी। और वह अपने सिर पर वही लकड़ियों का गट्ठा उठाए हुए थी। और कालू उसका रास्ता रोके, ज़ोर-ज़ोर से भूंक रहा था।

डोला ने आते ही कालू को भगा दिया। कालू दूर नहीं भागा, एक तरफ खडा होकर भूकने लगा। लड़की ने डोला को देखा, तो उसके चेहरे का रंग उड़ गया। उसने जल्दी से लकडी का गट्ठा ज़मीन पर फेंक दिया, और एक तरफ को भागने की कोशिश करने लगी। डोला ने जल्दी से उसे हाथ से पकड़ लिया, और बोला, "तो तू मेरी लकड़िया चुराने आई थी ?"

लड़की ने धीरे से सिर हिलाकर स्वीकार किया। उसकी आंखें भय से फैली हुई थी, और उसका सांवला चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था, और उसके पतले-पतले होठ भय से कांप रहे थे। वह हम सबको देखकर सहम गई थी, और उसकी आखो मे आंसू आ गए थे।

"तुम वकरवालों की लड़की हो ?" डोला ने पूछा।

लड़की ने फिर धीरे से सिर हिलाकर स्वीकार किया।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"तोरुजा।"

"तू लकड़ियां क्यों चुरा रही थी ?" मेरे पिताजी ने पूछा।

"रोटी पकाने के लिए।"

"तू आप जंगल से काटकर क्यों नही लाती ?"

"मुझे जगल मे जाते हुए डर लगता है।"

"तो अपने भाई को भेज दिया होता", मेरे पिताजी ने कहा।

"मेरे कोई भाई नहीं है। एक मा है, और वह बुड्ढी है। मैं दिन-भर भेड़ों के गल्ले को संभालती हूं। मा रोटी पकाती है। जंगल कौन जाए ?"

"तो आज से पहले कौन जाता था ?"

"मानो जाता था ?"

मानो कौन था, यह हममें से किसीको मालूम न था। डोला बोला, "तो अब मानो क्यों नहीं जाता ?"

लड़की ने आंखें झुका लीं । उसके पतले-पतले होंठ कांपते गए । वह धीरे से बोली, "मानो ने शादी कर ली है ।"

डोला देर तक तोरुजा के चेहरे की ओर देखता रहा । आखिर उसने लड़की के पांव के पास पड़े हुए लकड़ी के गट्ठे को उठाकर उसके सिर पर रख दिया, और कहा, "आज ले जा । मगर फिर कभी चोरी न करना ।"

डोला किसान के घर से आकर, मेरे पिताजी फिर तुंग के पेड़ के नीचे बैठकर, वंसी के कांटे में एक छोटा-सा कीड़ा लगाते हुए बोले, "चार नंगी दीवारें, एक नंगा फर्श, पत्थर का तवा……देखा, बेटा, तुमने ? उस किसान को ज़िन्दगी की वे सारी सुविधाएं प्राप्त हैं, जो एक ट्राउट मछली को प्राप्त हैं।"

"पर डोला तो मछली नहीं है", मैंने कहा ।

"डोला तो मछली नहीं है, चाचाजी", तारां ने भी कहा ।

"हां बेटी, नहीं है," मेरे पिताजी ने बड़ी उदासी से कहा, "पर कभी-कभी मैं सोचता हूं, कि मछली से इनसान बनने तक इनसान ने जो यह करोड़ों बरस का फासिला तय किया है, तो किसलिए किया है ?"

पिताजी ने उसके बाद हमसे बात नहीं की । और चूंकि उनकी बात हमारे पल्ले नहीं पड़ी थी, इसलिए हम भी पिताजी को मछली के शिकार में लगे छोड़, अपनी गेंद लेकर वहां से दूर घास के मैदान में खेलने के लिए चले गए ।

मेरे पिताजी बड़े अजीब आदमी हैं । कभी-कभी ऐसी बात करते हैं, जो किसीकी समझ में नहीं आती ।

इस घटना के तीन दिन बाद हम लोग अशमां झील के किनारे कुमुदिनी के फूलों के हार बना रहे थे, क्योंकि पिताजी ने आज यहीं किश्ती में बैठाकर हमें झील की सैर कराई थी, और झील में जगह-जगह कुमुदिनी के फूल चौड़े-चौड़े पत्तों पर तैर रहे थे, और उन सफेद और गुलाबी फूलों को देखकर तारां का जी ललचा गया था, और मेरे पिताजी ने उस झील की सतह से फूल तोड़ दिए थे । और अब हम उन फूलों को इकट्ठा करके नदी-किनारे, जहां से झील का पानी नदी में गिरता था, बैठकर उनके हार बना रहे थे । तारां डाकबंगले के चौकीदार से सुई और धागा मांग लाई थी, और बड़ी कुशलता से हार बना रही थी । हा… …ने गले में पहन लिया, एक हार मेरे गले में डाल… …थे, उन्हें उसने अपने

बालों मे उडस लिया। और वह उस समय बिलकुल झील की रानी मालूम हो रही थी।

ठीक उसी समय डोला अपने कुत्ते को लेकर उधर से निकला। हमे खेलते देखकर वह रुक गया। उसके हाथ मे लकडी की एक छोटी-सी पनचक्की थी। उसने हमारे पास बैठकर, नदी के दो पत्थरो के वीच उस लकड़ी की पनचक्की को फंसा दिया। और जव पनचक्की अच्छी तरह से दो पत्थरों के बीच फंस गई, तो उसके पहिये पानी मे जोर-ज़ोर से घूमने लगे, बिलकुल उस पनचक्की की तरह, जिसमे लोग आटा पिसाते हैं।

तारा ने चिल्लाकर कहा, "मैं यह पनचक्की लूगी। मैं यह पनचक्की लूंगी।"

मैंने कहा, "नही, मैं लूंगा। नही जी, मैं लूंगा डोला, यह पनचक्की मेरी है।"

डोला ने कहा, "मेरे पास दो पनचक्कियां है, और मैं एक-एक पनचक्की तुम दोनों को दे सकता हूं।"

"तो जल्दी से निकालो," मैंने आकुलता से कहा।

"पर एक चीज़ मुझे भी चाहिए।"

"क्या ?"

"वह रवड़ की गेंद।"

"नही, मैं अपनी रवड़ की गेद नहीं दूगा, कभी नही दूगा," मैने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कहा।

तारा की ललचाई हुई निगाहे अभी तक पनचक्की पर गड़ी थीं। यकायक वह मेरी तरफ देखकर, आदेशपूर्ण स्वर मे वोली, "क्यों नही दोगे ? तुम्हारे पास तो दो ऐसी गेंदें हैं।"

"नहीं। मैं नही दूगा। मैं नही दूंगा। और यह पनचक्की भी लूगा।" मैंने हठ करते हुए कहा।

"अच्छा, जैसी तुम्हारी मरज़ी," डोला पत्थरों के बीच से अपनी पनचक्की को निकालते हुए वोला।

"नही, इसे यही रहने दो," तारा वडे तेज स्वर में बोली, "इसें गेंद दो जी, नही तो मै तुमसे नही वोलूंगी, कभी नही वोलूंगी, एकदम कुट्टी कर लूंगी।"

आखिर मुझे गेंद देनी ही पड़ी। पर मेरी समझ मे नही आता था कि क्या करूं, क्या न करूं। एक तरफ तारा रूठी बैठी थी, एक तरफ पनचक्की चल रही

थी, और एक तरफ वह खूबसूरत गेंद थी। मैंने एक आह भरी, और आखिरकार गेंद डोला को दे दी। डोला ने दूसरी पनचक्की भी नदी के दो पत्थरों को मिलाकर उनमें फंसा दी। और जब पनचक्की अच्छी तरह से चलने लगी, तो मेरी गेंद लेकर झट वहा से रवाना हो गया, कि कही मैं अपनी बात बदल न दूं।

"हुंह ! भला यह गेंद को लेकर क्या करेगा ?" मैंने तारां से कहा, "गेंद से तो बच्चे खेलते हैं, और बड़े कभी नहीं खेलते। मैंने तो अपने पिताजी को कभी गेंद खेलते हुए नही देखा।"

"आहा जी, मेरी पनचक्की तुम्हारी पनचक्की से तेज़ चल रही है।" तारां खुशी से ताली बजाती हुई बोली। वह मेरी गेंद को बिलकुल भूल चुकी थी।

स्वार्थी ! चुड़ैल !

मैंने गुस्से में आकर तारां का गाल पकड़कर नोच दिया, और उसे चुटिया से पकड़कर खूब पीटा। मुझे गेंद के चले जाने पर बहुत गुस्सा आ रहा था।

दिन-भर हमारी कुट्टी रही। पर शाम की चाय के समय फिर सुलह हो गई। हम लोग डाकबंगले के बरामदे में चाय पी रहे थे, कि डोला सिर पर लकडी का एक भारी गट्ठा उठाए हुए आया। लकड़ी का गट्ठा उसने बरामदे के फर्श से नीचे घास के एक तख्ते पर फेंक दिया, और स्वयं पसीना पोंछते हुए बरामदे के फर्श पर हमारे पैरो के पास बैठकर सुस्ताने लगा।

मेरे पिताजी ने उसे चाय की दो प्यालियां पिलाईं, और उससे इधर-उधर की बातें करते रहे। जब डोला चाय पीकर अच्छी तरह सुस्ता चुका, तो उठकर चलने लगा। चलते-चलते रुककर, मेरे पिताजी से पूछने लगा, "डाक्टर साहब, यह लोहे का तवा कितने का आता होगा ?"

"मेरे खयाल में दो-ढाई रुपये का आता होगा। क्यों ?"

"कुछ नही। यों ही पूछा।"

और जब डोला कुछ सोचता हुआ वहां से चला गया, तो मेरे पिताजी आप ही आप मुस्कराने लगे।

दो दिन बाद हमे पता चल गया, कि डोला ने गेंद का क्या किया था।

मैं और तारां नर्गिस की ऊंची-ऊंची डण्डियोंवाले पौधो मे आंखमिचौली खेल रहे थे, और कोई भी हमे दूर से देख सकता था। यकायक तारां ने मेरे मुंह

पर हाथ रखकर कहा, "श-श ! वह देखो।"

"कहां ?"

तारां ने नर्गिस की कुछ डण्डियां अपने सामने से हटाईं। सामने नदी का किनारा नज़र आ रहा था। नदी के उस पार तोरुजा अपने दोनो पाव पानी में डाले, हमारी गेंद से रेत पर खेल रही थी। गेंद बार-बार उछलती थी, और उसके हाथ मे आ जाती थी। और तोरुजा मुस्कराते हुए कुछ गुनगुना रही थी। और जहां हम छिपे बैठे यह तमाशा देख रहे थे, वहां से कोई हमें न देख सकता था।

मैंने कहा, "मेरी गेंद तोरुजा के पास कैसे आई ?"

"छी ! तुम बडे बुद्धू हो !" तारां ने मुंह बनाकर कहा, "यह गेंद तोरुजा को डोला ने दी है।"

"भला डोला ने इसे मेरी गेंद क्यों दी ? मैं अभी जाकर अपनी गेंद उससे छीन लाता हूं।" मैंने बहुत बिगड़कर कहा।

मैं अपनी जगह से उठने ही वाला था, कि 'शी' करके तारां ने फिर मुझे अपने पास छिपा लिया। अब हमने देखा, कि नदी के इस किनारे सिर पर लकडियो का एक गट्ठा उठाए डोला इधर ही चला आ रहा है, जिधर हम छिपे बैठे है। तोरुजा ने उसे देखा, तो आपसे-आप हंस पड़ी, और गेंद को अपनी कमीज की जेब में डालकर, जल्दी-से पानी में उतर गई। उसने अपनी सलवार घुटनों तक ऊंची कर ली थी। पानी मे चलते-चलते वह दूसरे किनारे आकर डोला के पास खड़ी हो गई। उसकी आधी टागें अभी तक नंगी थी, और पानी मे भीगी हुई थी। और डोला तोरुजा की तरफ बड़ी अजीब नज़रों से देख रहा था। जब तोरुजा डोला के बिलकुल निकट आ गई, तो डोला ने अपनी आंखें उसकी आखो मे डाल दी। दोनो देर तक एक-दूसरे की तरफ देखते रहे।

"ये कोई बात क्यो नही करते ?" मैंने तारां से पूछा।

"शी !" तारा ने गुस्से से मेरे मुंह पर हाथ रख दिया।

डोला ने अपने दोनो हाथो से लकड़ी के गट्ठे को संभाला, और उसे धीरे से उठाकर बडी सावधानी से तोरुजा के सिर पर रख दिया।

तोरुजा ने लकड़ी का गट्ठा अपने सिर पर लेकर जल्दी से इधर-उधर देखा। फिर धीरे से बोली, "शाम को मिलूगी—तुंग के पेड़ के नीचे। वह—ढलवान-

वाले तुंग पर।"

"भूल न जाना।"

"नही। मैं तुम्हारे लिए मक्का की रोटी और मक्खन और कद्दू का साग भी लाऊंगी। अच्छा, मैं चलती हूं। कोई देख लेगा।"

"थोड़ी देर तो ठहरो।"

"नहीं, कोई देख लेगा", कहकर तोरुजा जल्दी से नदी-पार करके चली गई।

डोला इस किनारे बैठ गया, और देर तक तोरुजा को जाते देखता रहा।

"कोई देख लेता, तो क्या होता?" मैंने तारां से पूछा।

तारां ने सोचकर कहा, "शायद वे लोग तोरुजा से उसकी गेंद छीन लेते।"

हमे आए हुए यहा आठ दिन हो गए थे। और अब हमें यह जगह बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी। जब हम यहां आए थे, तो यह जगह बहुत बड़ी और बहुत फैली हुई मालूम होती थी। लेकिन पिछले आठ दिनों में हमने इसका चप्पा-चप्पा देख डाला था। और अब यह जगह हर रोज सिकुड़ती जा रही थी, और अन्त मे बिलकुल एक गेंद की तरह छोटी-सी दिखाई देने लगी थी। और मैंने अब तय कर लिया था, कि कल पिताजी से लौटने के लिए हठ करूंगा, और तारां भी मेरा साथ देगी।

पिछले दो दिन से माल मंत्री सरदार कृपालसिंह भी आ गए थे। वे कहीं दौरे पर जा रहे थे, और हमारे पिताजी के पास दो दिन के लिए रुक गए थे। मेरे पिताजी के आग्रह करने पर ये दोनों दोस्त दिन-भर शतरंज खेलते रहते थे। और शतरंज के शौक मे पिताजी ने ट्राउट मछलियो के शिकार को भी भुला दिया था।

तीसरे दिन सरदार कृपालसिंह ने पिताजी से विदा चाही। उनका सामान बंध चुका था। और अब वे आगे जानेवाले थे, और मेरे पिताजी से हाथ मिलाकर विदा हो रहे थे। सुबह का वक्त था। सर्दी खासी थी, और बरामदे के बाहर उनके घोड़े और खच्चर हिनहिना रहे थे, और मज़दूर बोझ उठा रहे थे। इतने मे एक अर्दली भागा-भागा आया, और माल मंत्री से हाथ जोड़कर बोला, "हुजूर, एक बेगार कम है। रात को एक बेगारी किसान भाग गया।"

माल मंत्री ने इधर-उधर देखा। ठीक उसी समय उनकी निगाह डोला पर

पड़ गई। डोला अभी जंगल से लकड़ियां काटकर लाया था, और बरामदे में बैठा सुस्ता रहा था।

"इसे ले लो", माल मंत्री ने हाथ का इशारा करके कहा।

डोला चौंककर उठ खड़ा हुआ।

"नही हुजूर, नही। मै नहीं जाऊंगा। मुझे यहां काम है।"

"काम का बच्चा!" माल मंत्री को एकदम गुस्सा आ गया। उन्होंने जोर से डोला की पीठ पर हंटर मारकर कहा, "उठ, सुअर का बच्चा!"

डोला उठते ही भागा। दो अर्दली उसके पीछे दौड़े, और उसे पकड लाए।

माल मंत्री ने कहा, "साले के सर पर भी दो जूते मारो।"

डोला के सिर और पीठ पर जूते मारे गए, जिससे उसका शरीर नीला पड़ गया। लेकिन फिर भी वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, "मैं नहीं जाऊगा। मैं नही जाऊगा।"

"साला, बेगार नही देगा, तो यहां राजाजी का राज कैसे रहेगा?" माल-मंत्री ने गरजकर कहा, "रखो इसके सर पर बोझ और मारो इसकी पीठ पर हंटर।"

दो आदमियो ने मिलकर उसके सिर पर बोझ रखा, और हटर मारते हुए उसे आगे ले चले। डोला घूम-घूमकर पीछे देखता जाता था, और रोता जाता था। मुझे डोला पर बड़ा तरस आया। और जब डोला चला गया, तो मैंने पिताजी से पूछा, "चाचाजी, डोला को क्यो मार रहे थे?"

"वह बेगार नही देता था, बेटा। और बेगार तो यहा हर किसान को देना पड़ता है। यह सरकारी कानून है।"

"कानून कैसा होता है, पिताजी?"

"जो राजाजी कह दें, वह कानून होता है", पिताजी ने बडी अन्यमनस्कता से कहा, और घूमकर कमरे के अन्दर चले गए। मुझे ऐसा लगा, मानो उन्हे इस समय मुझसे बात करना पसन्द नहीं।

उसी रात को तोरुजा हाफती-कापती चौकीदार के पास आई, और उससे पूछने लगी, "डोला कहां है?"

"यहां नही है", चौकीदार ने रस्सी बटते-बटते कहा।

वह बड़ी कुशलता से रस्सी बना रहा था। और हम दोनों बच्चे उसे देख रहे थे।

"कोते गुच्छा ?" तोरुजा ने गूजरी भाषा में उससे पूछा।

"थो आई", चौकीदार ने हाथ उठाकर, उत्तर की पर्वत-श्रेणी की ओर इशारा करते हुए कहा।

"कुदा छेस (कब आएगा) ?" तोरुजा ने डरते-डरते पूछा।

"क्या पता, कि कब आएगा ?" चौकीदार रस्सी को बल देते हुए बोला, "दस दिन में आए, बीस दिन मे आए। सरकारी बेगार पर गया है। जब मालिक छोड़ेंगे, तब आएगा।"

तोरुजा धम्म-से ज़मीन पर बैठ गई, और रोने लगी।

चौकीदार देर तक रस्सी बटता रहा। उसका चेहरा कठोर और क्रोधभरा था। पर वह मुंह से कुछ नहीं बोला।

देर तक तोरुजा रोती रही। आखिर बोली, "हम बकरवाल लोग इस ढाके को छोडकर कल जा रहे हैं।"

चौकीदार कुछ नहीं बोला।

"मुझे भी उनके साथ जाना पड़ेगा। लेकिन अगर डोला यहां होता..."

चौकीदार फिर भी कुछ नही बोला।

तोरुजा वहां से उठ गई, और नदी-किनारे जा बैठी। देर तक बैठी-बैठी हमारी गेंद से खेलती रही। वह खेलती जाती थी, और रोती जाती थी। कुछ अर्से के बाद उसने गेंद को सीने से लगाकर, जोर से पानी की सतह पर फेंक दिया।

नदी की लहरों पर लड़खड़ाती हुई गेंद दूर तक बहती चली गई। और जब तक वह गेद उसे नज़र आती रही, तोरुजा टकटकी बांधे उसकी तरफ देखती रही। और जब गेंद नज़रों से ओझल हो गई, तो वह एक आह भरकर वहां से उठी, और भागती हुई बकरवालो के डेरों की तरफ गायब हो गई।

रात को पिताजी नित्य की अपेक्षा बहुत चुप-चुप-से थे। हमने उनसे कहानी की फरमाइश की। पर उन्होने हमे कहानी नहीं सुनाई। कहने लगे, "आज जल्दी सो जाओ। सुबह हम लोग वापस चलेंगे।"

संपेरिन

एक दिन मैं अपनी मा के कमरे में से अपनी गेंद लेने जा रहा था, कि मैंने दरवाज़े की ओट से अपनी मां को यह कहते सुना, "हटो, मुझे मत छुओ।"

"क्यों न छुऊं?" यह मेरे पिताजी की आवाज़ थी।

"आज संक्रान्ति है।"

"संक्रान्ति है, तो क्या हुआ?"

"संक्रान्ति मे नही छूते," मांजी बोली।

"तो कल?" मेरे पिताजी ने पूछा।

"कल?......कल तो वामन अवतार का दिन है।"

"अच्छा, तो परसो?"

"ऊं?......परसों?......परसों शाह मुराद की नियाज़ का दिन है। भूल गए? नियाज़ देने के लिए तुम्हें भी मजार पर चलना होगा। मियां रमज़ानी कह रहे थे, कि डाक्टर साहब कभी मजार पर नही आते। क्यों?........ऐ, हटो—हटो।......कहे देती हूं। मुझे हाथ लगाया, तो दोबारा स्नान करना पड़ेगा।"

थोड़ी देर के बाद पिताजी कमरे से बाहर निकले, लेकिन बेहद भन्नाए और झल्लाए हुए। अच्छा हुआ, कि मैं दरवाज़े की ओट मे था। उन्होने मुझे नही देखा, वरना मुझपर ज़रूर खफा होते। मांजी और पिताजी इस बात पर नाराज होते है, कि बच्चों को बड़ों की बातें नही सुननी चाहिए। यह बात आज तक मेरी समझ मे नही आई। बड़े तो हमारी हर बात सुन लेते है। ज़रा-ज़रा-सी बात कुरेद-कुरेदकर पूछते हैं। और हम जो कही दो बातें सुन पाएं, तो मार खाएं। पिताजी के जाने के बाद मैं दौड़ता हुआ मां के कमरे मे घुस गया, और

जाते ही उनकी टांगों से लिपटकर कहने लगा, "आहा जी, मैंने छू लिया ! छू लिया ! छू लिया !"

मैंने सोचा था, कि मांजी खफा होंगी, झल्लाएंगी, ऊंचा बोलेंगी। पर वे तो कुछ न बोली। वे अपनी कपड़े सीने की मशीन पर गिलाफ चढ़ा रही थी। मुझे अपनी टांगों से लिपटते देखकर मुस्कराईं। झुककर उन्होने मुझे अपनी गोद में उठा लिया, और प्यार करते हुए बोलीं, "काका, तूने नाश्ता कर लिया ?"

"हां, मां।"

"और लाल शर्वत पी लिया ?"

"हां, मां !"

मां ने मेरे दोनो गालों को चूमा। फिर गोद से उतारकर बोलीं, "तो जाओ, अब बाहर बाग में खेलो।"

मांजी उस वक्त मुझसे खुश नज़र आती थी। मैंने सोचा, कि यह मौका अच्छा है, इसलिए मैंने पूछ लिया, "मांजी, एक बात बताओ।"

"क्या ?"

"मैंने तुम्हें छुआ, तो तुम कुछ नहीं बोलीं। अभी पिताजी तुम्हें छूने को कह रहे थे, तो तुम 'हटो-हटो' क्यों कह रही थी ?"

मांजी का मुस्कराता हुआ चेहरा एकदम गुस्से से लाल हो गया। वे खड़ी थी। यकायक एक कुर्सी पर बैठ गईं। उन्होने मुझे दोनों बांहो से पकड़ लिया, और ज़ोर-जोर से हिलाते हुए बोलीं, "तुम हमारी बातें सुन रहे थे ? बदमाश !"

मैं सहम गया। पर मांजी मुझे बराबर गुस्से में इस तरह हिला रही थी, जिस तरह पिताजी दवा पिलाते वक्त दवा की शीशी ज़ोर-ज़ोर से हिलाते है।

मैने कांपकर स्वीकार कर लिया, "हां। मैं दरवाजे की ओट मे था। पर मैंने सुना नही, मा। वह तो आपसे-आप मेरे कानो में पड़ गया। मैं तो अपनी गेद लेने..."

पर मां ने आगे का वाक्य पूरा होने न दिया। तड़ाख-पड़ाख तीन-चार तमाचे मेरे गालों पर पड़ गए। "तुमसे दस वार कहा, कि बड़ों की बातें मत सुनो—मत सुनो। तू फिर भी नही मानता। एं ? (एक तमाचा) एं ? (दूसरा तमाचा) एं ? (तीसरा तमाचा) ढीठ, सुअर !"

न जाने मुझे अभी और कितने तमाचे खाने पड़ते, अगर उसी समय कमरे

साफ करनेवाली नौकरानी वेगमां भागी-भागी अन्दर न आती। उसने दौड़कर जवरदस्ती मुझे मेरी मां से छीन लिया, और कहा, "अव क्या इसे मार ही डालोगी ? तुम्हारा गुस्सा तो अन्धे का गुस्सा है, मालकिन। मारते वक्त आगा-पीछा कुछ नहीं देखती।"

वेगमां ने मेरे आंसू पोंछे, मेरा मुंह धोया, मेरा मुंह चूमा, मुझे अपने गुदगुदे सीने से लगाया। और जब मेरी सिसकियां वन्द हो गईं, तो वह मुझे बंगले के पिछवाड़े की तरफ ले गई, जहां पालतू कवूतरों की छतरी थी। वेगमां ने एक कवूतर पकड़कर मेरे हाथ में दिया। और वह वोली, "लो, अव इससे खेलो।"

यह कहकर, वह मुझे पिछवाड़े छोड़कर, काम करने के लिए अन्दर चली गई।

मैं कुछ देर तक तो कवूतरों से खेलता रहा। मुझे पता नहीं, मैं कव तक खेलता रहा। यकायक मैंने महसूस किया कि, जैसे बंगले से वाहर लकड़ी के जंगले से दो वड़ी-बड़ी आंखें मुझे घूर रही हैं। मैंने सिर उठाकर अच्छी तरह देखा।

वह वडी खूवसूरत थी। उसका रंग तांवे का-सा था। आंखें गहरी हरी थीं। वाल उलझे-उलझे से थे। उसने लाल सूसी की एक चुस्त कमीज पहन रखी थी, जिससे उसकी छातियां वहुत उभर आई थीं, और उन छातियों पर चांदी की जंजीरें और रंग-विरंगे मनकों की मालाएं पड़ी थीं। उसके कान में चांदी की वड़ी-वड़ी वालियां थीं, जो वह जव वात करती थी, तो वडे मजे से झूलती थीं, और कभी-कभी उसके गाल से भी लग जाती थीं, क्योंकि वे वालियां वहुत ही वड़ी थीं। और जव वह मेरी तरफ देखकर मुस्कराई और हंसी, तो मुझे उसके दांत शिवन्ती की कलियों की तरह विलकुल छोटे-छोटे और वहुत ही सफेद मालूम हुए। ऐसे सफेद दांत मेरे नहीं हैं, हालांकि मांजी मुझे दिन में दो वार ब्रुश करवाती हैं।

लाल सूसी की कमीज के नीचे एक घेरेदार लहंगा पहन रखा था, जिसपर कई रंग के और कई तरह के कपड़े लगे हुए थे, और कई जगह छोटे-छोटे टुकड़ों में लगे हुए थे। लेकिन उसके पांव नंगे थे। उसके पांव में जूता नहीं था। और उसने अपने कन्धे पर दो टोकरियां लटका रखी थीं।

जव वह मेरी तरफ देखकर मुस्कराई, तो मैंने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

जंगले के बाहर खड़े-खड़े, उसने अपने बाएं पांव से अपना दायां पांव खुजाया, और बोली, "मैं संपेरिन हूं। मेरे पास बहुत अच्छे-अच्छे सांप है। देखोगे ?"

"हां, देखूगा," मैंने खुश होकर कहा। फिर तुरन्त ही निराश होकर बोला, "मगर तुम्हारे पास तो बीन भी नही है।"

"हां ! क्यों नहीं है ?" संपेरिन अपना कन्धा झटककर बोली, और पीठ पर लटकी हुई बीन सामने आ गई। "यह देखो।"

मैंने खुश होकर दोनों हाथों से ताली पीटकर कहा, "पहले तुम मुझे बीन बजाकर दिखाओ।"

वह बोली, "नहीं, पहले तुम मुझे एक आना दो।"

मेरा दिल एकदम से बैठ गया। "एक आना तो मेरे पास नही है," मैंने बिलकुल निराश होकर कहा।

"तो अपनी मां से मांग लाओ।"

"वह नहीं देंगी। वे मुझे सांप भी नही देखने देंगी। उन्हें सांपों से बहुत डर लगता है।"

"तो अपने बाप से मांग लाओ," सपेरिन ने मुझे समझाया।

"हां, यह हो सकता है।"

यकायक मेरा चेहरा खुशी से खिल उठा, और मैं छलांग मारकर लकडी के जंगले से कूदकर, संपेरिन के पास चला गया। "चलो, मै तुम्हें पिताजी से एक आना लेकर देता हूं।"

मै बाग की रविशो पर दौड़ता-दौड़ता संपेरिन के आगे-आगे चला जा रहा था। रास्ते मे मुझे पिताजी मिल गए, जो अस्पताल से वापस आ रहे थे, और पशुओं के बाड़े के पास खड़े होकर माली से बात कर रहे थे, जो सौंफ की झाड़ियों के एक बहुत बड़े झुण्ड के पास बैठा हुआ, अपनी खुरपी चला रहा था। सौंफ का झुण्ड कद में मुझसे दुगना होगा। पिताजी उस झुण्ड के दूसरी तरफ थे, और हम लोग इस तरफ। इसलिए पिताजी ने मुझे आते हुए न देखा। मैं सिर्फ उनके सीने से ऊपर का हिस्सा देख सकता था, और वे मुझे न देख सकते थे। उन्होने सिर्फ इतना देखा, कि उलझे-उलझे काले बालों के हाले मे गहरी हरी आंखोंवाला एक चेहरा सौंफ की महकती हुई फुनगों पर फिसलता हुआ उनके सामने चला आ रहा है। वे ठिठककर खड़े हो गए। बोले, "तुम कौन हो ?"

"मै संपेरिन हूं।"

"यह काम तो मर्दों का है।"

"मेरा बाप संपेरा था। जब वह मर गया, तो मैने यह काम संभाल लिया।"

"क्यों ? तुम्हारे कोई भाई नही है क्या ?"

"नही। सिर्फ एक अंधी मां है, और वह बहुत बूढ़ी है।"

वे दोनों एक-दूसरे की तरफ गौर से देख रहे थे। मेरा इरादा दखल देने का था, और चीखकर अपनी उपस्थिति जताने का भी था; पर जब दो बड़ों में बातें शुरू हो जाएं, तो उसमें बच्चो का दखल देना अच्छा नहीं होता। और अभी-अभी मै अपनी मां से पिट भी चुका था। पर उन लोगों की बातें होती है दिलचस्प।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद, मेरे पिताजी मुस्कराए। बोले, "तुम सांप पकड़ सकती हो ?"

सपेरिन ने निर्भीक दृष्टि से उन्हें ताकते हुए, खामोशी से स्वीकृति मे सिर हिला दिया।

"नाग भी ?" पिताजी शरारत-भरी निगाहों से उसे ताकते हुए बोले।

संपेरिन मुस्कराई। हंसकर, बोली, "बडे से बड़ा नाग भी मेरी बीन की आवाज़ सुनकर छिपा नही रह सकता। मस्त होकर मेरी बीन पर झूमने लगेगा।"

"हमारे बाग में बहुत-से सांप रहते हैं। क्या तुम उन सबको पकड़ लोगी ?"

"सबको पकड़ लूंगी। मगर तुम दोगे क्या ?"

मेरे पिताजी खामोश खड़े, देर तक उसे देखते रहे। फिर आहिस्ता से बोले, "और अगर मैं तुम्हे कुछ न दूं, तो ?"

संपेरिन ने देर तक मेरे पिता की तरफ देखा। वह उनके बिलकुल करीब आ गई। उसकी सास जोर-ज़ोर से चल रही थी। उसने कुछ कहना चाहा, पर मेरे पिता की बड़ी-बडी निर्भीक आंखो और भरे हुए रोबीले चेहरे को देखकर कुछ घबरा गई। यकायक उसने आखें नीचे झुका ली। धीरे से कमज़ोर आवाज़ मे बोली, "अच्छा।"

जिस तरह उसने "अच्छा" कहा, वह मुझे बहुत बुरा लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसकी आवाज रो रही हो, और कराह रही हो, जैसे दूर से

बाग में कोई अनजानी हवा आई थी, और सिसकियां भरकर चली गई। कभी-कभी दोपहर में हमारे बाग में बिलकुल इसी तरह हवा रोती हुई मालूम होती है। मैंने माली से कई बार इसका कारण पूछा है। पर वह हमेशा हंसकर टाल देता है। कहता है, "यह तुम्हारा वहम है, काका। हवा तो बस हवा है। वह न रोती है, न गाती है। वह तो बस दरख्तों के पत्तों को छेड़ती हुई गुजर जाती है।"

पर उस वक्त हवा ने न जाने किसको छेड़ा था। मेरे पिताजी बोले, "तुम कहां रहती हो ?"

"आज ही तो यहां आई हूं। अभी रहने का ठिकाना कहीं नहीं बनाया। वैसे मैं अपनी मा के साथ बालेपुर के गांव में रहती हूं।"

"तुम अकेली घूमती हो ? तुम्हें मर्दों से डर नहीं लगता ?"

सपेरिन बोली, "मेरे सांप मेरी रक्षा करते हैं। मुझे तो नहीं, हां, मर्दों को मुझसे डर लगता होगा।"

"हमारे बाग में एक नाग है। वह किसीसे नहीं डरता।" मेरे पिता ने उसकी आंखों में आंखें डालकर कहा।

"कहां रहता है वह ? मुझे उसका बिल बता दो, या रहने की जगह दिखा दो। मैं उसे कपड़ लूंगी। मेरी बीन में ऐसा जादू है, जिससे बड़े से बड़ा नाग भी नहीं बच सकता।"

मेरे पिता बोले, "मैं माली से कहे देता हूं। वह तुम्हें अपने घर रख लेगा। और तुम हमारे बाग के नाग के बिल पर मत जाना। उसके काटे का मंतर नहीं है।"

"जाओ, जाओ !" संपेरिन अपनी छोटी-सी जीभ निकालकर, मेरे बाप को चिढाते हुए बोली। फिर उसने अपनी बीन उनके सामने झुलाई, और बोली, "बताओ तो सही, किधर है वह तुम्हारा नाग ?"

"चलो, तुम्हे दिखाऊं ?"

पिताजी को तो खैर मालूम न था, कि मैं सौंफ के झुंड के इस तरफ सपेरिन के इतने निकट खड़ा हूं, पर संपेरिन क्यों मुझे भूल गई थी ? वह मेरी तरफ से बिलकुल अनजान बन, मेरे पिता के साथ-साथ चलने लगी। मैं भी थोड़ा फासला रखकर उनके पीछे-पीछे पेड़ों की ओट मे चलने लगा।

चेरी के पेड़ो से गुज़रकर, वे लोग आड़ुओं के झुंड में पहुंचे। वहां होकर अखरोट के पेड़ों के पास एक छोटे-से टीले पर जाकर रुक गए। मेरे पिता बोले, "वह नाग यहां रहता है।"

"इस टीले के अन्दर ?"

"हां। कहते है, कि इस टीले के अन्दर सैदां बी की कब्र है।"

"सैदां बी कौन थी ?"

"यह तो कोई नही जानता, कि सैदां बी कौन थी। पर लोग कहते है, कि वह बडी खूबसूरत थी। यह उन दिनो की बात है, जब यहां पर न यह बाग था, न अस्पताल था, न राजाजी का महल था। उन दिनों मुगल बादशाह का एक काफिला इधर से गुज़रा था। और सैदां बी एक मुगल शहज़ादे पर आशिक हो गई थी। वह मुगल शहज़ादा अपने बाप के पास से भागकर यहां आया था और छः महीने सैदां बी के घर में रहा था।"

"फिर ?"

"छः महीने बाद मुगल शहज़ादे के पास शाही दरबार से सन्देश आया। उसके बाप ने उसे माफ कर दिया था, और अब वह उसे वापस बुला रहा था।"

"फिर ?"

"फिर मुगल शहज़ादा चला गया, और सैदां बी से कह गया, कि वह उसे शाही दरबार में बुला भेजेगा। सैदां बी ज़िन्दगी-भर मुगल शहजादे के बुलावे का इन्तज़ार करती रही।...यहां पर वह दफ्न है।"

सपेरिन कुछ न बोली। वह झुककर, और पांव पसारकर, टीले के पास बैठ गई। उसने टोकरिया कन्धे से उतारकर अलग रख दी, और आंखे बन्द करके बीन बजाने लगी।

सचमुच उसकी बीन की आवाज़ बडी मनमोहिनी थी। जैसे वह बीन रो-रोकर पुकार रही हो, किसीको बुला रही हो। जैसे वह बीन जख्मी हो, और मरहम चाहती हो। जैसे वह एक भूला हुआ बच्चा हो, और रास्ता पूछती हो—किधर ?...किधर ?

वह देर तक बीन बजाती रही। पर मैंने देखा, कि उसके बीन बजाने पर भी कोई नाग टीले से बाहर नही निकला। हां, मेरे बाप की आंखों मे आंसू थे।...

"उधर माली के घर में एक संपेरिन आई है," मैंने अपनी मां से कहा।

"संपेरिन ?"

"हां, सांप पकड़नेवाली संपेरिन। पिताजी ने उसे नौकर रखा है। एक सांप पकड़ने पर उसे आठ आने मिलेंगे।"

"पर तेरे पिता ने तो मुझे बिलकुल नही बताया।...अच्छा, चल, मुझे दिखा। किधर है वह संपेरिन ?"

मैं मां को माली के घर ले गया। माली का घर मिट्टी का था, और उसमें सिर्फ दो कोठरियां थीं। एक कोठरी मे संपेरिन अपने बाल खोले, एक टूटा हुआ आईना अपने सामने रखे, बालो मे कंघी कर रही थी। जब उसने मेरी मां को अपने सामने देखा, तो कंघी करते-करते रुक गई। उसकी गहरी हरी आंखें यकायक यों चमक उठी, जैसे कोई नदी के गहरे पानी में जोर से पत्थर फेंक दे। फिर उसने धीरे से अपनी आंखें झुका ली।

मेरी मा उसे एक नज़र देखकर, उलटे पांव लौट आईं। बाहर आकर माली से, जो अपनी बीमार पत्नी के पांव दाब रहा था, बोलीं, "अरे, यह साप क्या पकडेगी ? यह तो खुद नागिन है, नागिन !"

मेरी मा का स्वर अत्यन्त कटु था। मेरी तो कुछ समझ में नही आया, कि मा उसको नागिन कैसे कह रही थी। संपेरिन तो बिलकुल मेरी मां की तरह एक औरत थी। वह नागिन कैसे हो सकती थी ? मेरा खयाल है, कि ये बड़े लोग कभी-कभी बड़ी ही मूर्खता की बातें कर जाते हैं। इसलिए मैंने अपनी मां से कह दिया, "पर वह तो एक औरत है, जिस तरह दूसरी औरते होती है। मां, उसको तुमने नागिन कैसे कह दिया ?"

"तुम नही समझते," मेरी मां तिनककर मुझसे बोली, "और तुमसे किसने कहा है, कि बड़ो की बातों में बोला करो ? मैं तुमसे दस बार कह चुकी हूं, कि बड़ो की बातो में दखल न दिया करो। वरना..."

मैं चुप रह गया, और सहमकर जरा पीछे हट गया। मा मुझे जल्दी-जल्दी चलाकर, बल्कि लगभग दौड़कर बंगले मे वापस ले गईं।...

रात को जब मेरी मां ने समझा, कि अब मैं गहरी नीद सो गया हू, हालांकि मैं जाग रहा था, और महज़ आंखे बन्द करके बिस्तर में दुबका पड़ा था, उस वक्त मेरी मां मेरे पिता से लड़ने लगी, "उस जनम-जली संपेरिन

को तुमने नौकर रखा है ?"

"हां।"

"क्यों ?"

"सांप मारने के लिए।"

"तो इस काम के लिए कोई संपेरा नही मिलता था ?"

"नही मिला न, तभी तो उसको रखा है।"

"मैं नही मानती।"

"नहीं मानती; तो तुम कोई संपेरा ला दो। मैं इसे निकालकर उसे रख लूगा।"

"किसी संपेरे या संपेरिन की जरूरत ही क्या है ? मैंने तो नही देखा, कि बाग में किसी सांप ने आज तक किसीको काटा हो।"

"काटा न हो, पर काट तो सकता है।"

"यह सब तुम्हारी फिजूल की बाते है। मैं सब समझती हू। वह संपेरिन कल यहां से जाएगी।"

"वह नही जाएगी !"

"वह जाएगी !"

"नही जाएगी !"

"मैं उसको झाड़ू मार के निकाल दूगी !" मेरी मा यह कहते-कहते रोने लगीं।

"पगली हुई हो ?" मेरे पिता खिन्न होकर बोले, "कुछ दिन की बात है। जब वह बाग के सांप पकड़ लेगी, तो आप ही चली जाएगी। दिन-भर तुम्हारा बच्चा बाग मे खेलता रहता है। मैं जो कुछ कर रहा हूं, उसके भले के लिए ही कर रहा हूं।"

यह सुनकर यकायक मेरी मां रोते-रोते चुप हो गईं। जैसे उनके दिल को यकीन आ चला हो। बोली, "सच कहते हो ?"

उनके स्वर में आधा शक था, आधा विश्वास।

पिताजी ने मेरी मां के आंसू पोछे, और उन्हे प्यार करके कहा, "पगली ! इतनी नादान न बन। क्या तुझे अभी तक मेरी मुहब्बत का यकीन नही है ?"

मेरी मा ने इतमीनान की सांस ली। फिर वह करवट बदलकर, मेरे पिता

की बांह पर सिर रखकर सो गई।

लेकिन तीन-चार दिन के बाद उन्होंने फिर पिताजी से लड़ाई शुरू कर दी। हुआ यह था, कि मांजी ने मेरे पिता को सैदां बी के टीले के पीछे खुसर-पुसर करते देख लिया था। उनके तन-बदन मे आग लग गई थी। अब वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी, कि या तो अब मैं यहां रहूंगी, या वह हरी आंखोवाली नागिन रहेगी।

और पिताजी कह रहे थे, "आहिस्ता बात करो, आहिस्ता बात करो। कोई सुन लेगा। बच्चा जाग जाएगा।"

और माजी कहने लगी, "जाग जाए बच्चा। सुन ले बच्चा। मेरा बच्चा क्या, सारी दुनिया सुन ले। तुम्हारे ऐसा बेवफा मर्द इस दुनिया मे कोई न होगा। मुझे मेरे मायके भेज दो। मैं यहां एक पल नहीं रहूंगी। अगर वह कलमुंही यहा से नही जाएगी, तो मैं यहा से चली जाऊंगी।"

"इन तीन दिनो में उसने बाग मे से बीस साप पकड़े हैं।"

"बीस पकडे हो, या पचास पकड़े हो। मैं कल उसकी चुटिया पकड़कर उसे अपने अहाते से बाहर फेंक दूगी।"

"तुम्हारे जैसी शक्की औरत मैंने नही देखी। खाहमखाह शक करने लग जाती हो।"

"तो तुम उसको यहा रखकर मेरा शक क्यो मजबूत करते हो?" मेरी मां गुस्से से चिल्लाई।

"अच्छा, बाबा, अच्छा। मैं हारा, तू जीती। मैं उसको एक हफ्ते के बाद निकाल दूंगा। इस एक हफ्ते में जितने सांप वह बाग से निकाल सकती है, उसे निकाल लेने दे। इस बीच मे उससे झगड़ा मत कर। अपने दिल को हलकान मत कर। मैं जो कुछ कर रहा हू, तेरे बच्चे की सुरक्षा के लिए कर रहा हूं।"

"अच्छा, तो बस एक हफ्ता!"

"हां, बस एक हफ्ता।"

"और उससे ऊपर एक दिन नही।"

"एक क्षण नही," मेरे पिता ने मेरी मा को अपनी बांहो मे लेकर कहा।

मैंने एक आंख धीरे से खोली, और फिर झट बन्द कर ली।

मेरी मा इतमीनान की सास लेकर बोलीं, "जब तुम इस तरह बात करते

हो, तो मेरे मन को विश्वास हो जाता है।"

मेरे पिताजी ने संपेरिन से कह दिया था, कि सात दिन के बाद उसे यहां से चली जाना होगा। इतने दिन मे वह जितने सांप पकड़ सकती हो, पकड़ ले। सपेरिन उनकी बात सुनकर चुप हो गई थी। उसने एक बार गौर से मेरे पिता की तरफ देखा, पर वहां अपने मतलब की कोई बात न पाकर वह निराश हो गई, और चुपचाप मुंह मोड़कर सैदां दी के टीले की तरफ चल दी, और वहां पांव पसारकर, जोर-जोर से बीन बजाने लगी। आज उसकी बीन मे मिठास न थी, मस्ती न थी, दु:ख न था, दर्द न था। सिर्फ गम और गुस्सा था, और कुछ ऐसी बेचैन लहर और तडप थी, जैसे डंक से वंचित नागिन बल खा-खाकर ज़हर मांग रही हो।...

सातवे दिन, जिस दिन संपेरिन जानेवाली थी, उस दिन मेरी मां को एक साप ने काट खाया।

मेरी मां बरामदे की दीवार से लगी इश्क-पेचां की बेल को पानी दे रही थी, कि उनके पाव के नीचे कही से एक सांप आ गया, और उसने तुरन्त उन्हे टखने से ऊपर काट खाया। मेरी मां उसी दम चीखकर गिर पडी, और क्षण-प्रति-क्षण नीली होती गईं। अमरीकसिंह रसोइये ने उसी समय कसकर रस्सी से दो जगह पांव बांध दिया, और भागकर पिताजी को बुला लाया। पिताजी ने आते ही जहां पर सा। ने काटा था, वहां पर नश्तर से चीरा लगाकर बहुत-सा खून बहा दिया, और घाव मे पोटाशियम परमेगनेट भर दिया। उन दिनों हमारे यहां सांप के ज़हर के इंजेक्शन नही मिलते थे, और बस मेरे पिता सांप के काटे का यही इलाज करते थे, जिससे कभी तो रोगी बच जाते थे और अक्सर मर जाते थे।

मेरी मां बेहोश थी और नीली पड़ती जा रही थी। और उनके मुह से झाग निकलने लगी थी। और मै उन्हे देख-देखकर रो रहा था।

यकायक मेरे पिताजी वहा से उठे, और सीधे माली के घर गए। उस समय सपेरिन अपना सामान बांध चुकी थी। आज उसने अपना लहगा और कमीज़, दोनो धोकर साफ-सुथरे कर लिए थे। बालों को कंघी की थी। नदी की मुलायम रेत से रगड़कर अपने चांदी के ज़ेवर चमका लिए थे। अखरोट की छाल से अपने होठ लाल किए थे। और बालो मे गुलाब का एक बड़ा फूल लगा रखा था।

और अब वह बिलकुल जाने की तैयारी कर रही थी।

"रानो, चलो।"

"कहां ?"

"वह मर रही है। उसे बचा लो।"

"उसे मरने दो।"

"नही, रानो, मान जाओ। उसे बचा लो। मेरी दवा काम नही कर रही है।"

"मेरे पास कोई दवा नही है। मै सांप पकड़ती हूं, सांप का जहर दूर नही कर सकती।"

"तुम दूर कर सकती हो। तुमने खुद मुझे बताया था कि तुम्हारे पास सांप के काटे की बेहतरीन दवा है।"

"वह मैंने कही खो दी है," सपेरिन मुंह मोड़कर बोली। उसके स्वर मे बड़ी कठोरता और विरक्ति थी।

मेरे पिताजी ने उसके दोनों हाथ पकड़कर रोते हुए कहा, "नही रानो, मान जाओ। उसे बचा लो। किसी तरह से भी बचा लो। अगर वह मर गई, तो मैं भी ज़िन्दा न रहूंगा।"

संपेरिन ने पलटकर मेरे पिताजी की तरफ देखा, और धीरे से बोली, "उसके लिए तुम रोते हो, और मेरे लिए तुम्हारे पास एक आंसू भी नही है।"

मेरे पिताजी ने सिर झुका लिया। वे चुपचाप संपेरिन के पास खड़े हो गए—खामोश अपराधी की तरह।

सपेरिन ने एक आह भरी। उसने अपनी दोनों टोकरियां उठाईं, और बोली, "अच्छा, जो तुम चाहते हो वही होगा।"

वह मेरे पिताजी के साथ मेरी मां के बिस्तर के पास आई। उसने मेरी मां के घाव में अपने होंठ लगा दिए, और अपने होठों से चूस-चूसकर घाव का बहुत-सा खून बाहर थूक दिया। फिर उसने अपने झोले को टटोलकर उसमे से एक काली-सी डिबिया निकाली, और उसे खोलकर उसमें से एक हरे रंग का मरहम निकालकर घाव पर लगाया। इसके बाद वह बाहर बाग मे दौड़ी-दौड़ी गई और देर तक कुछ तलाश करती रही। आखिर एक ढक्की के किनारे से वह एक बड़े-बड़े लम्बोतरे पत्तोवाला एक पौधा उखाड़ लाई और उन पत्तो को

एक खरल में कूटकर, उसका रस निकालकर, मेरी मां कें होंठों में टपकाने लगी। दो घंटे के वाद मेरी मां के मुंह से झाग निकलना बन्द हो गया। फिर धीरे-धीरे वदन का नीलापन दूर होता गया। फिर धीरे-धीरे मेरी मां ने आंखें खोली। और जव उन्होंने आंखें खोली, तो संपेरिन धीरे से परे हट गई। और मेरे पिताजी आगे आ गए। और उन्होंने वड़े प्यार से मेरी मां का सिर अपनी जांघों पर ले लिया, और पूछा, "अब कैसी हो ?"

मेरी मां ने दुर्बल स्वर में कहा, "मालूम होता है कि वच जाऊंगी। मरा लाल कहां है ?"

मैं रोता-रोता अपनी मां के गले से लग गया। थोड़ी देर मे मैं, मां और पिताजी, हम तीनों खुशी की सिसकियां भर रहे थे।

यकायक मेरे पिताजी को कुछ याद आया। उन्होने कहा, "जानकी, तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी जान किसने बचाई है ?"

मां ने खामोशी से इनकार मे सिर हिलाया।

मेरे पिताजी ने पलटकर कहा, "रानो, आगे आओ।"

लेकिन जब मेरे पिताजी ने पलटते हुए यह वाक्य कहा, उस वक्त वहां कोई न था। संपेरिन जा चुकी थी।

संपेरिन फिर कभी लौटकर हमारे इलाके में नही आई। हां, सर्दी की रातों मे जब चारों तरफ वर्फ पड़ जाती है, तो कभी-कभी नदी के उस पार से वीन की तड़पती हुई आवाज आती है, जिसे सुनकर मेरे पिताजी अपने कमरे से वाहर निकल आते हैं, और वेचैन होकर वरामदे मे टहलना शुरू कर देते है। और वह आवाज दूर नदी के पानी से परे हवा के कन्धो पर कांपती हुई इस तरह आती है, जैसे वीरान चमन में कोई वालक खो जाए, और विलख-विलखकर अपना रास्ता पूछे।

ढक्की के नीचे

ढक्की के नीचे, पुलिस की गढी के नीचे, कोई एक मील लम्बा विशाल क्षेत्र था और अपने इलाके के बच्चों के विचार में इससे लम्बा मैदान दुनिया मे कही न होगा। उस मैदान मे लगभग एक सौ दुकानों का बाज़ार होगा और इस बाज़ार के पीछे दोनों तरफ इलाके के सबसे गरीब लोगो के घर थे और इलाके के अत्यधिक धनी लोगो के घर भी इनमे थे।

दो मंजिले, तीन मंज़िले बडे घर, पत्थर की दीवारो के घर, टीन की छतों के घर; घरों के बीच गलियां, गलियो मे नुक्कड़ और नाके—जहां गंदे लड़के शोर मचाते हुए, नाक सुड़कते हुए कबड्डी खेलते थे। या काजी-कोलड़ा या शाह-चोर-डाकू। ढक्की के ऊपर की सबसे ऊंची सतह पर अफसरो के बंगले थे और ढक्की के नीचे मैदानी इलाके पर स्थानीय निवासियो के घर थे। विशेष अवसरों के सिवा अफसर-क्लास के बच्चो और घरवालो को इस तरफ आने की मनाही थी। इसी प्रकार स्थानीय निवासियो के बच्चे और स्त्रियां ढक्की की ऊंचाई पर बहुत कम आती थी। यद्यपि इस प्रकार का ऐसा कानून न था और नोटिस भी नही लगा हुआ था, पर बस एक अलिखित-सा प्रतिज्ञा-पत्र था, जिसकी पाबंदी दोनों दुनियाओं मे होती थी।

हमारी दुनिया अलग थी, उनकी दुनिया अलग थी। दोनो के मध्य एक बाह्य प्रकार की भिन्नता थी जिसकी तह के नीचे एक तेज़ गतिवाली धारा भी चलती थी; जिसके कारण अफसर लोग वहां के निवासियो पर विश्वास न कर सकते थे। नाही वहां के निवासियों को अफसरो पर पूरा भरोसा था। यूं तो ऊंचे और नीचे लोगों मे अविश्वास तो हो सकता है, विश्वास कैसे हो सकता है? एक आज्ञा देता है, दूसरा उस आज्ञा का पालन करता है। इस सम्बन्ध मे

प्रेम कहां से आएगा ?

ढक्की के ऊपर रहनेवाले ढक्की के नीचे रहनेवालों को घृणा की दृष्टि से इसलिए भी देखते थे कि नीचेवाले इलाके में दिन-रात मार-पीट, सर-फुटौव्वल होती। प्रतिदिन दो-एक केस पुलिस के पास आ जाते और फिर घायल चारपाइयों पर लदे हुए अस्पताल पहुचा दिए जाते। स्थानीय निवासियों से अफसर लोग वड़े तंग थे। यद्यपि यह भी सच था कि इन्ही लडाइयो के कारण उनकी हुकूमत चलती थी और उनका डंडा चलता था और ऊंचाई और निचाई के वीच अंतर रखना और किसी प्रकार कठिन भी है। इसका अनुमान केवल वही लोग कर सकते हैं जो स्वयं ऊंचे पर रहते हों।

किन्तु यह भी सच है कि ढक्की के नीचे रहनेवाले लोगों के विना ढक्की के ऊपर रहनेवालों का निर्वाह नही हो सकता था। हमारे नौकर वही से आते थे—अर्दली, बावर्ची, नौकर, मुर्गे-अंडे वाले, दूध, डवलरोटी, मक्खन, विस्कुट-वाले, कपड़े वेचनेवाले, कपड़े धोनेवाले, नाई, मोची, सुनार, लुहार लकड़हारे। यह तो सच है कि यदि ढक्की के नीचे रहनेवाले लोग न हों तो हमारे घर में चूल्हा तक न जले। किन्तु यह एक ऐसी भयानक वास्तविकता थी जिसे सारे इलाके मे कोई स्वीकार करने को तैयार न था। हम समझते थे और हमें समझाया जाता था कि दुनिया ऊंचाई पर स्थित है। इस ऊचाई के नीचे कितनी निचाई है—इसका सामना करने के लिए हम तैयार न थे।

बचपन मे मुझे इन तमाम बातों का इतना गहरा और स्पष्ट अहसास न था। बहुत-सी बातें गडमड थी, जिन्हे ढक्की के ऊपर रहनेवाले लोग अपनी बातों से और गड्मड कर देते थे। मुझे बार-बार बताया जाता था कि ढक्की के नीचे के लोगो से अधिक बाते नही करनी चाहिए। उनसे दूर रहना चाहिए। उनके इलाके मे नही जाना चाहिए। वे लोग चोर और वदमाश है; धोखेबाज और वेईमान है, लड़ैत है और नफरत करनेवाले हैं। वे लोग जीना नही जानते। सभ्यता उन्हे छू नही गई है। ऐसे लोगो से हमारा क्या सम्बन्ध ?

एक दिन लगा कि जैसे सारा अस्पताल घायलो से भर गया। दस-बारह चारपाइयां घायलों से लदी हुई पुलिसवालों की निगरानी में पहुंचीं और यह भी सुना कि दो-चार और आ रही हैं। ढक्की के नीचे रहनेवालों मे वड़ी भयानक लड़ाई हुई थी। पन्द्रह-बीस आदमी घायल हुए थे, जिसमें से दो की

दशा शोचनीय थी।

पिताजी ऊपर अस्पताल से नीचे केवल यह कहने आए थे मेरी मां से कि देखो, आज काके को ऊपर न भेजना। सारा अस्पताल घायलों से भरा पड़ा है। संभव है, दो-तीन उनमे से मर-मरा जाएं और उसका वच्चे पर वहुत वुरा प्रभाव पड़ता है।

और मेरी मां यह सुनकर एक रंगीन कहानियोंवाली पुस्तक लेकर मेरे पास वैठ गई और दूर देशों की परियों की काल्पनिक कथाएं सुनाने लगीं। किन्तु मेरा हृदय तो ऊपर अस्पताल के घायलो में था। कैसी लड़ाई हुई ? क्यों हुई ? कैसे-कैसे वे लड़नेवाले लोग होंगे ? पन्द्रह-वीस घायल और साथ मे पचास-साठ दूसरे आदमी भी आए होगे ! शायद ढक्की के नीचे के कुछ वच्चे भी होगे ! ऊपर अस्पताल में इतनी गहमागहमी है और यहां एक राजा के वेटे को एक परी ने जादू के जोर से मेढ़क वना दिया है। किस कम्वख्त को मेढको मे दिलचस्पी है ? मांजी किसी प्रकार मेरे समीप से हटें तो मैं ऊपर अस्पताल को भागूं। किन्तु जव इसमे पन्द्रह मिनट गुज़र गए और मांजी किसी प्रकार न हटीं और कहानी लम्वी होती गई तो अचानक मेरे पेट मे दर्द शुरू हो गया, और जव सोडा मिन्ट खाने पर भी दूर न हुआ तो मांजी ने किरपा को वुलाकर कहा, "ऊपर अस्पताल जाकर डाक्टर साहव से पेट के दर्द की दवा ले आ। काके के पेट मे दर्द होता है।"

"मैं खुद चला जाता हूं", मैंने अत्यन्त कोमलता से परामर्श दिया।

"नही !" मांजी वड़ी कठोरता से वोलीं।

मैंने कहा, "पेट में सिर्फ दर्द ही नहीं, वल्कि एक गोला-सा भी मालूम होता है।"

"गोला-सा भी ?" मांजी जरा परेशान होकर वोली।

"और गोले के अन्दर एक ढोला-सा भी वजता है—घूं···घूं···घूं।"

"गोले के अन्दर ढोला ?" मांजी और भी घवरा गईं।

"और ढोले के अन्दर एक फफोला-सा उठता है। ऐसा लगता है पेट अभी फट जाएगा।" मैंने पेट को जोर से पकड़ते हुए कहा।

मांजी विलकुल घवरा गईं। "किरपे, तू जल्दी से काके को डाक्टर साहव के पास ले जा और जा के दिखा दे। और कह देना—सव काम छोड़कर पहले

काके के लिए दवा दे दें।"

"जी बहुत अच्छा !" कहकर किरपा मुझे हाथ से पकड़कर ले चला। मेरा एक हाथ किरपा के हाथ में था और दूसरे हाथ से मैं अपना पेट पकड़े हुए था। जब तक बरामदे का कोना नज़र आता रहा, मै इस तरह पेट पकड़कर चलता रहा। परन्तु ज्यो ही मैं बंगले के पीछे पहुचा मैंने एक झटका देकर किरपे से हाथ छुड़ा सीधा अस्पताल का रास्ता लिया और जाते-जाते किरपे से कह दिया, "अगर मांजी से कुछ नही कहेगा तो दुअन्नी दूंगा।"

किरपे का चेहरा प्रसन्नता से खिल गया। एक तो वह बेहद लालची, दूसरे मेरे बनावटी काम के सिलसिले मे उसे भी घंटे-पौन घंटे की छुट्टी मिल रही थी। सौदा बुरा नही था। सो वह उसे क्यो न स्वीकारता ?

मैं भागता हुआ अस्पताल के समीप पहुंच गया। बरामदे में तिल धरने की जगह न थी। सारा बरामदा घायलों की चारपाइयों से भरा पड़ा था, बल्कि कुछ चारपाई बरामदे के बाहर बाग के एक कोने मे पड़ी थी और दूसरे कोने में कुर्बानअली सार्जेण्ट पूरनमल शाह और दूसरे बेफिक्रों को लड़ाई के किस्से सुना रहा था। मैं भी मजमे मे सम्मिलित होकर उनकी बाते सुनने लगा।

"हां''''कह तो रहा हूं, बता तो रहा हूं'''झगड़ा कोई आज का नहीं है, कल का नही है—झगड़ा बहुत पुराना है। यह समझ लो कि एक तरफ चौधरी खुशीराम का मकान है, दूसरी तरफ मुलदयालों के सरदार शहबाज़ खान का मकान है। बीच में यह ज़मीन है, जिसपर दोनो अपना-अपना हक जतलाते है।"

"पर वास्तव में ज़मीन किसकी है ?" कहरसिंह सुनार ने पूछा।

"इसीका तो झगड़ा है कि'''कह तो रहा हूं'''बता तो रहा हूं''''ज़मीन ही का तो झगडा है। तहसीलदार कुछ कहता है, गिरदावर कुछ कहता है, पटवारी कुछ बताता है। जो ज्यादा रिश्वत दे दें ज़मीन उसकी हो जाती है। कभी चौधरी खुशीराम की हो जाती, कभी शहबाज़ खान की। पर किसीके नाम अभी तक नही लिखी गई है।"

"अभी तक क्यो नही लिखी गई ?"

"किसीके नाम चढ़ जाती तो ज़मीन का सारा झगड़ा ही मिट जाता। कह तो रहा हूं''''बता तो रहा हूं'''।" कुर्बानअली एक समझदार फिलासफर की तरह हाथ हिलाते हुए बोला, "एक तरफ मुलदयालों का लड़ाका सरदार

शह्‌वाज खान और दूसरी तरफ मुह्‌याल ब्राह्मणों का मुखिया चौधरी खुशीराम, नम्बरी लड़ैत और लट्ठमार। दोनों अमीर और ताकत के नशे मे फूले हुए। एक को मुसलमानो के वहुमत की हिमायत और दूसरे को हाकिमो की हिमादत पर घमण्ड।"

"वह तो ठीक है, पर यह मलिक अता मुहम्मद कैसे वीच मे आ गया ?" पूरनमल शाह ने पूछा, "झगड़ा तो चौधरी खुशीराम और शह्‌वाज खान का था।"

"···कह तो रहा हूं···बता तो रहा हूं···" कुर्बानअली ने मज़े से सिगरेट का कश लेकर कहा, "एक रात परमेसर का नाम लेकर चौधरी खुशीराम ने झगड़े-वाली ज़मीन पर मकान बनाना शुरू किया और रातोरात दीवार खड़ी कर दी। जिसे दूसरे दिन अल्लाह का नाम लेकर शह्‌वाज खान ने गिरा डाला। दूसरी रात फिर चौधरी खुशीराम ने दीवार वना दी, जिसे तीसरे दिन फिर शह्‌बाज खान ने गिरा दिया। पूरे वारह दिन से यही किस्सा चलता रहा। अन्त में चौधरी खुशीराम के वड़े हवलदार आत्माराम को गुस्सा आ गया। वह एक महीने की छुट्टी पर घर आया हुआ है। वह एक गंडासा लेकर घर से बाहर निकल आया और लगा शह्‌वाज़ खान को मुकावले पर ललकारने। उधर मुलदयाल भी सरदारों का सरदार है। एक ज़माने में उसके वुज़ुर्गों ने इस इलाके पर हुकूमत की है। उसे भी तैश आ गया और वह भी अपने खानदानवालों को लेकर लड़ाई के लिए वाहर निकल आया। उधर ब्राह्मण भी तुम जानते हो वड़े खूखार होते है। अपने-आपको परसराम की औलाद कहते हैं और अग्रेज़ी सरकार की फौज मे भरती होकर बड़ा नाम पाते है। वे सब लोग हल्ला बोलकर चौधरी खुशीराम की टोली में शामिल होते गए और बिलकुल निकट था कि हिन्दू-मुस्लिम फिसाद शुरू हो जाता, पर उसी वक्त मालिक अता-मुहम्मद बीच मे कूद पड़ा।"

"मलिक अता मुहम्मद को क्या पड़ी थी ?" पूरनमल शाह ने पूछा।

"कह तो रहा हूं···बता तो रहा हूं··· मलिक अता मुहम्मद अपने दो वेटों जान मुहम्मद और गुलाम मुहम्मद और खानदानवालों को लेकर बीच मे आ गया। उसने चौधरी खुशीराम को तो परे हटा दिया और बोला—चौधरी, तू बीच में मत वोल ! यह लड़ाई तो मेरी है। इतना कहकर उसने चौधरी खुशीराम

को सच ही परे हटा दिया और शहवाज़ खान को ललकार कहने लगा—इस ज़मीन पर तो चौधरी खुशीराम का मकान बनेगा। चोरी-छुपे नहीं, दिन-दहाड़े बनेगा। अगर तुझमें मुकाबला करने की हिम्मत है तो मूंछ ऊंची करके सामने आ जा।"

"इसके बाद लड़ाई कैसे न होती? यह सुनते ही शहवाजखां ने मलिक अता मुहम्मद पर छुरी का वार किया और दोनों में घमासान लड़ाई होने लगी। कुश्तों के पुश्ते लग गए।"

"और पुलिस कहां थी?" फत्तू कुम्हार ने पूछा।

कुर्बानअली सार्जेण्ट ने फतहदीन कुम्हार को भयानक दृष्टि से देखा और क्रोध से बोला, "...कह तो रहा हूं...बता तो रहा हूं...मौजा लालगढ़ी में एक फरार मुज़रिम को पकड़ने के लिए गया हुआ था दो सिपाहियों को साथ लेकर। थानेदार साहब चककलां पर तफतीश के लिए गए हुए थे। हवलदार नियाज़ मुहम्मद के पेट में दर्द था और चार सिपाही छुट्टी पर थे। पर मैंने आते ही मामले को हाथ मे ले लिया और अब तो थानेदार साहब भी तफतीश अधूरी छोड़कर आन पहुंचे हैं।"

"मगर यह तो तुमने बताया ही नही कि मलिक अता मुहम्मद को क्या पड़ी थी...?"

"मालिक अता मुहम्मद तो ऐसा घायल हुआ है कि उसके और उसके बड़े बेटे जान मुहम्मद के बचने की तो कोई उम्मीद ही नहीं है। अभी मजिस्ट्रेट लालखान भी अन्दर गया है। और थानेदार साहब भी अन्दर डाक्टर साहब के पास मौजूद है। मेरा खयाल है, मलिक अता मुहम्मद का बयान हो रहा होगा। तब मालूम होगा कि उसको क्या पड़ी थी कि पराये फट्टे मे अपनी टांग अड़ाकर अपनी जान की बाज़ी लगा दी।"

यह कहता हुआ, सिगरेट कश लगाता हुआ कुर्बानअली मजमे को वही बरामदे के बाहर छोड़ बरामदे की सीढ़ियां चढने लगा। मैं भी उसके पीछे-पीछे हो लिया। बरामदे मे बहुत भीड़ थी। पर लोगो ने सार्जेण्ट को देखकर रास्ता दे दिया। मैं भी कुर्बानअली के साथ-साथ अस्पताल के अन्दर चला गया। यद्यपि दरवाज़े पर पहरा था पर सब लोग मुझे पहचानते थे, इसलिए किसीने मुझे नही टोका।

कुर्वानअली आपरेशन-रूम के अन्दर चला गया। मैं भी उसकी आड़ लेकर उसके पीछे खड़ा हो गया इसलिए किसीने मुझे नहीं देखा।

कुर्वानअली की ऊंची लम्बी टांगों के बीच में से मैंने देखा कि एक चारपाई पर जान मुहम्मद की लाश पड़ी है! सिर से पांव तक ढकी हुई। और एक चारपाई पर मलिक अता मुहम्मद सख्त घायल दशा मे पड़ा है। मजिस्ट्रेट लालखान उसका बयान कलमबंद कर रहा है। एक कुर्सी पर डाक्टर साहब बैठे थे एक पर थानेदार साहब। उनके पीछे चौधरी खुशीराम अपनी बड़ी पगड़ी संभालता हुआ खड़ा था।

"परन्तु, मलिक अता मुहम्मद, तुमने दूसरों की लडाई मे क्यों दखल दिया? ज़मीन का झगड़ा तो शहबाज़ खान और चौधरी खुशीराम के बीच था। तुम बीच मे क्यो कूद पड़े?" मजिस्ट्रेट लालखान ने पूछा।

मलिक अता मुहम्मद धीरे-धीरे बोल रहा था, जैसे एक-एक शब्द को तोल रहा हो। "सरकार को १९०५ की प्लेग तो याद न होगी! सरकार तो अभी यहां आए न थे। लेकिन जो उस ज़माने के लोग यहां मौजूद हैं, वे जानते हैं कि हमारे इलाके में इससे बड़ी तबाही का ज़माना कभी नहीं आया। हर रोज़ लोग दर्जनों, कभी सैकड़ो की तादाद मे मरते थे। सरकारी बैलगाड़ियां आती थी और लाशों को लादकर ले जाती थीं। लोग इलाके को छोड़कर भाग रहे थे। मां को बेटे की परवाह न थी, बेटे को बहिन की। अन्दाज़न मेरी उम्र उन दिनों मुश्किल से बीस साल की होगी। घर में सबसे पहले मुझे प्लेग हुई और मुझे प्लेग मे फंसा देखते ही घरवाले घर छोड़कर भागने लगे। मैं बुखार मे फुक रहा था। लेकिन किसीने मेरी बात नही पूछी। कोई मेरे नज़दीक नहीं आया। हाय-हाय करके सब लोग अपनी जान लेकर भागे—मां भी, भाई भी, बहिन भी, बाप भी—पल-भर में घर खाली हो गया। मैं भी उनके पीछे यह कहता हुआ भागा—अरे ज़ालिमों! कहां जा रहे हो? मुझे भी साथ लेते चलो। लेकिन वे सब लोग मुझे देखकर इस तरह भागे जैसे मैं इन्सान नहीं भूत हूं।

"मैं बेहोश होकर दरवाज़े के बाहर गिर पड़ा। फिर मुझे याद नहीं क्या हुआ? कबतक मैं बेहोश रहा? इस बेहोशी के आलम मे सरकारी बैलगाड़ी आई और मुझे मुर्दा समझकर ढोने लगी। उन्होने मुझे मुर्दा समझकर बैलगाड़ी

मे रख लिया था कि इतने में चौधरी खुशीराम के पिता स्व० चौधरी सीताराम कही से आ निकले। उन्होने मेरी हिलती हुई टांगों को देखकर अन्दाजा लगाया कि मुझमे अभी जान बाकी है। उन्होंने उसी वक्त बैलगाड़ी से मुझे उतरवा लिया। खुद अपने कंधों पर उठाकर अपने घर पर ले गए और उनकी दिन-रात की सेवा से और दवादारू से मैं अच्छा हो गया। फिर प्लेग दूर हो गई। फिर इलाके के लोग वापस आ गए। फिर मेरा घर भी बस गया। फिर मेरी शादी भी हो गई। मेरे घर बच्चे-बाले हुए। मुझे इज्जत और खुशी मिली। मगर सरकार मेरी जान तो चौधरी स्व० सीताराम की दी हुई थी। वह जान आज उसके खानदानवालो के काम आ गई। इसकी मुझे बडी खुशी है।" मलिक अता-मुहम्मद इतना कहकर खामोश हो गया। उसका चेहरा पीला पड़ गया और उसकी सांस रुक-रुककर चलने लगी और फिर बड़ी कठिनाई से उसने आंखें खोली और चौधरी खुशीराम को इशारे से अपने पास बुलाया, अपना हाथ उसके हाथ मे देकर कहा :

"चौधरी खुशीराम उस वक्त से एक जान का कर्जा तुम्हारे खानदान का हमारे खानदान पर चला आता है। आज मैंने वह कर्जा उतार दिया, बल्कि एक जान का और कर्जा तुम्हारे ऊपर चढ़ा दिया। ठीक है?"

चौधरी खुशीराम अपने आंसू पोंछते हुए बोला, "हां ठीक है।"

देर तक खामोशी रही। फिर धीरे मलिक का हाथ चौधरी के हाथ से पृथक् होकर अपने सीने पर चला गया। उसकी आंखे बन्द हो गईं और उसके रुकते हुए गले से इतना निकला, "मुझे मेरे बेटे की कब्र के साथ दफन करना।"

फिर उसके गले से रुक-रुककर 'अल्लाह-अल्लाह' की आवाज़ निकलने लगी। फिर वह आवाज़ भी खो गई। फिर एक हिचकी आई और डाक्टर साहब ने उसकी नब्ज छोड़कर कहा :

"खत्म हो गया।"

लालखान मजिस्ट्रेट ने बयान कलमबंद करके अपना कलम छोड़ दिया था। उसकी आंखें आंसुओ से भरी हुई थी। डाक्टर साहब और थानेदार, दोनों रो रहे थे। चौधरी खुशीराम मलिक की लाश से लिपटा धाड़ें मार-मारकर रो रहा था।

मजिस्ट्रेट लालखान ने अपनी कुर्सी छोड़ दी। स्वयं अपने हाथ से मलिक अता मुहम्मद की लाश को सिर से पांव तक चादर से ढक दिया। मेरे पिताजी का हाथ ज़ोर से दबाता हुआ बोला।

"इस ढक्की की पस्तियों मे भी कैसी-कैसी बुलन्दियां हैं।"

फिर उस आपरेशन-रूम मे बहुत-से लोग एकसाथ खड़े होकर फातिहा पढ़ने लगे।

पालकी

थानेदार नियाज अहमद मेरे पिताजी का बहुत दोस्त था। देखने में वह मेरे पिताजी से भी सुन्दर था। मेरे पिताजी की सूरत-शक्ल बड़ी अच्छी थी और उनका कद भी पांच फुट ग्यारह इन्च था। रंग भी गन्दमी और सांवले के दरम्यान था और वे हरएक से नर्मी और मिठास से बात करते थे। और जिससे बात करते थे उसका दिल मोह लेते थे।

मगर थानेदार नियाज़ अहमद की बात और ही थी। वह कुछ इस तरह का खूबसूरत था जैसे लोग तसवीरो मे खूबसूरत होते हैं! ऊंचा पूरा कद, छः फुट तीन इंच का जवान, पतली कमर, चौड़ा-चकला सीना। दांत सफेद और चमकीले। छोटी-छोटी बल खाती हुई मूंछें। चौड़े माथे पर किसी पुराने ज़ख्म का दाग था, जो उसके सफेद माथे पर एक स्थायी त्यौरी की तरह मालूम होता था इसलिए जब वह मुस्कराता था तो ऐसा लगता था जैसे कोई सोच में डूबा हुआ व्यक्ति मुस्करा रहा है। उसकी यह अदा औरतों को बहुत पसंद थी।

थानेदार नियाज़ अहमद अधिकतर दौरे पर रहता था। मगर जब दौरे से वापस आता तो मेरे पिताजी से मिलने के लिए हर रोज़ शाम को आता। उन दिनो मेरे पिताजी बहुत रात गए नीचे घर में आते। ऊपर ही अस्पताल के स्पैशल वार्ड मे जो प्रायः खाली रहता था और यदि खाली नहीं होता था तो खाली करवा लिया जाता था, वहां पर मेरे पिताजी और थानेदार नियाज़-अहमद की बैठक जमती थी। क्योंकि घर मे माजी का हुक्म चलता था इसलिए घर मे शराब पीने और गोश्त खाने पर मनाही थी। और मेरे पिता दोनो से कभी-कभी शौक फरमाते थे। इसलिए जब थानेदार नियाज़ अहमद दौरे से वापस आ जाता तो उनके दोनों शौक पूरे हो जाते थे। दोनों मित्र मिलकर

स्पैशल वार्ड में बैठकर अपने हाथों से मुर्गा भूनते और भिन्न-भिन्न प्रकार के मसाले गोश्त मे डालकर प्रयोग करते, बातें करते, गाते। बहुत रात गए तक उनके कहकहों की आवाजें बाग में आती। मेरी मां का चेहरा उस दिन फक और उड़ा-उड़ा-सा रहता और वे देर तक बरामदे मे लगे लकड़ी के थम्ब से लगी इश्क-पेंचा के निकट खड़ी होकर मेरे पिताजी की प्रतीक्षा किया करतीं। रात के ग्यारह-बारह बजे के करीब मेरे पिता बाग के नीले टाइलोवाली रविश पर झूमते-झामते आते और उनके होंठों पर यह गीत होता :

"फटी जब कान इस बन मे।"

मेरी मां को इस गीत से बड़ी चिढ़ थी ! गीत क्या था सिर्फ यही एक पंक्ति थी। जिसे मेरे पिता प्रायः शराब के नशे में और शराब के नशे के बाहर भी जब वह सोच में होते, वह गाया करते। 'फटी जब कान इस बन में"। और मेरी मां झुंझलाकर पूछती, "आखिर इस गीत का अर्थ क्या है। जब देखो इसे गा रहे हो। जब देखो।..."

"भली मानस" मेरे पिता स्कूल के मास्टर की तरह एक अंगुली उठाकर कहते—"इस गीत का मतलब है—फटी जब कान इस बन में अर्थात् जब कान इस बन में फट गई। कान नहीं जानती हो ? कान का मतलब है खान। जैसे लोहे की कान, नमक की कान, पत्थर के कोयले की कान; कोई भी एक खान जिसमें बारूद भरकर उड़ाया जाता है। कान से अभिप्राय यह तुम्हारा कान नहीं है। जिसमे सोने की बालियां झुमक रही है। भगवान की सौगंध जानकी, आज तुम बहुत अच्छी लग रही हो। यह रंग-रूप तुम कहां से लाई हो। तुम्हारी मां तो बडी कुरूप थी।..."

"वाह ! कहां कुरूप थी ?" मेरी मां क्रोध से चिढकर कहती। "ऐसी तो सुन्दर थी वह। कुछ भी हो, तुम्हारी मां से अच्छी थी !"...."ऐ काका, तुम यहां खड़े क्या सुन रहे हो ? तुमसे दस बार कहा है ...जाओ...भागो...सो जाओ... यह अभी तक जाग रहा है ?" मेरे पिता आश्चर्य से मेरी ओर देखकर मेरे सिर के बालों से खेलते हुए पूछते।

"बाप बारह बजे तक शराब पिएगा तो बेटा कैसे सोएगा ?" मेरी मां गुस्से से भड़ककर असली मतलब तक आ जातीं। वे लड़ना चाहती थीं। पिताजी पीछा छुड़ाना चाहते थे। नियाज़ अहमद की बैठक के बाद हमेशा इसी प्रकार

होता था। लेकिन इस लड़ाई से पहले मुझे विस्तर में भेज दिया जाता था। फिर दोनों पति-पत्नी बरामदे की कुर्सियों पर बैठकर लडा करते थे। यह अच्छी और उम्दा लड़ाई होती थी। क्योंकि मेरे पिता पीकर वेहद खिल जाते थे और वड़ी जीदारी से मेरी मां की वातों का उत्तर देते। हवा के हल्के-हल्के झोंके आते। दूर ढलानो से परे नदी का पानी चांदी के तार की तरह चमकता और इश्क-पेंचा के फूलों की महक से वरामदा सुगन्धित हो जाता। इसलिए इस निथरे-निथरे पवित्र वातावरण में लड़ाई भी बहुत उम्दा, सुथरी और सलीके से होती थी। शतरंज के खेल की तरह इस लड़ाई के भी नियम थे। पहले मां ऊंचा बोलती थी। मेरे पिताजी दवते थे। फिर बीच मे मेरे पिता ऊचा वोलने लगते थे। अन्त में मेरी मां का गला भर-सा आता था और वे धीरे-धीरे सिसकने लगती। यह एक प्रकार का सिगनल था कि अब संधि का समय आ गया है। उसके बाद मेरे पिता अपनी आरामकुर्सी से उठकर आते और वड़े प्यार से, नर्मी से और पश्चात्ताप की भावना से प्रेरित्त होकर मेरी मा का हाथ पकड़कर क्षमा मागने लगते। इसके वाद मैं कुछ न देखता। खुशी से लिहाफ मे दुवककर सो जाता—जितने दिन नियाज अहमद के साथ बैठक रहती थी, यही कुछ होता था।

नियाज अहमद की पत्नी मर चुकी थी लेकिन उसने दूसरी शादी नहीं की थी। पहली शादी से एक लड़का था जो बड़े शहर मे पढ़ता था। नियाज़ अहमद की आयु पैतीम वर्ष से कम न होगी लेकिन देखने मे वह मुश्किल से पच्चीस वर्ष का दिखाई देता था। वह वड़ा कसरती जवान था और जब सुवह-सवेरे दुर्गाकार थाने की सीढियां उतरकर घोड़ा दौड़ाकर नदी किनारे जाता और लंगोट वांधकर नदी किनारे व्यायाम करता तो सुवह की कोमल सुनहरी धूप में उसका गोरा शरीर कुन्दन की तरह चमकता था और राह चलती हुई औरतें सिर पर घड़े रखे उसे कनखियो से देखती जाती। घवराकर नजर झुका लेती फिर देखने पर विवश हो जाती फिर घबराकर नज़र झुका लेती। और गहरी आह भरकर अपने रास्ते पर चली जाती। नियाज़ अहमद को पता था कि उस-पर एक हज़ार एक लड़कियां, विवाहित और अविवाहित दोनों प्रकार की औरतें मरती हैं। अच्छे-अच्छे परिवारो से उसके लिए विवाह के सदेश आते थे मगर वह शादी न करता था। यह भी एक रहस्य था जिसका ज्ञान केवल मेरे पिता

को ही था।

कुछ समय से नियाज़ अहमद के नियमित व्यवहार में परिवर्तन आ चुका था। पहले तो वह लम्बे-लम्बे दौरे किया करता था। महीने मे केवल चार-छः दिन के लिए वापस सदर-मुकाम पर आता था। इसलिए चार-छः रोज़ की बुरी संगत मेरी मा मेरे पिताजी के लिए किसी न किसी प्रकार रो-पीटकर सहन कर लेती थी।

लेकिन अब एक साल से यह हो रहा था कि नियाज़ अहमद के दौरे कम होते जा रहे थे। पहले वह महीने में केवल चार-छः दिन के लिए आता था। अब वह आठ-दस दिन के लिए सदर में ठहरने लगा। फिर बारह-पंद्रह दिनों के लिए और फिर बीस-बीस दिन रहने लगा। अब पिछले चार महीनों से उसने यही पर डेरा डाल दिया था। इन चार महीनों मे वह एक बार भी दौरे पर नही गया था! यह मेरी मां के लिए बड़ी मुसीबत का वक्त था।

फिर एक रोज रात मे भगदड़ मची। सेना ने हमारे बंगले को घेरे में ले लिया। न केवल हमारा बंगला बल्कि जहां-जहां भी दूसरे अफसर लोग रहते थे उन सबके बंगले सेना ने घेरे में ले लिए थे। उन सबके घरो की तलाशी ली जाने लगी। सारे सदर मुकाम मे जगह-जगह मशाले-सी जलती हुई मालूम होती थी और लोग घबराकर इधर-उधर जा रहे थे और पुलिस के दस्ते गश्त कर रहे थे और भिन्न-भिन्न घरो की तलाशियां ले रहे थे—जहां-जहा भी उन्हे किसी प्रकार का संदेह था।

पूछने से मालूम हुआ कि राजाजी ने थानेदार नियाज़ अहमद की गिरफ्तारी के आदेश जारी किए हैं और इनाम भी रखा है। जो कोई नियाज अहमद को राजाजी के सामने जिंदा या मुर्दा पेश करेगा उसे दस हज़ार का इनाम दिया जाएगा। इसी संबंध मे वजीर से लेकर डाक्टर तक हर बड़े अफसर के मकान की तलाशी भी ली जा रही थी। क्योंकि थानेदार नियाज़ अहमद अफसरों मे बहुत ही प्रिय था। पुलिस ने रातो-रात तमाम बंगलो का कोना-कोना छान मारा। मगर नियाज़ अहमद का पता न चला।

सेना के चले जाने के बाद मेरे माता-पिता बिस्तरों पर पड़े खुसर-फुसर करते रहे। उनके विचार के अनुसार मैं सो रहा था। फिर भी मामला इतना गंभीर था कि वे लोग बहुत धीमे स्वर में बातें कर रहे थे। वास्तव में बात यह थी

कि नियाज़ अहमद हमारे ही घर में छिपा बैठा था। मेरी मां ने उसे अपने विशेष कमरे मे अर्थात् पूजा के कमरे में, राम और सीता की मूर्ति के पीछे छिपा दिया था। सैनिकों ने पूजा का कमरा भी खुलवाकर देखा था मगर वे लोग कमरे के अन्दर नहीं घुसे थे! दरवाज़े से अन्दर झाककर ही सरसरी नज़र से देखकर चले गए थे! क्योंकि वह पूजा का कमरा था और सब लोग मेरी मां के तीव्र स्वभाव से परिचित थे। उन्हे यह भी पता था कि मेरी मां अपने धार्मिक नियमो का बडी सख्ती से पालन करती है। इसलिए उन्हे इस बात का लेशमात्र संदेह भी नही हो सकता था कि मेरी मां एक मुसलमान को अपने पूजा के कमरे में घुसने देंगी। और उसे अपने पवित्र इष्टदेव की मूर्ति के पीछे छिपा देंगी।

और वास्तव में मेरी मां ऐसा कभी न करती। यदि मेरे पिता लड़-झगड़कर इसके लिए विवश न कर देते। मेरी मा तो जब भी इसे न मानी। लेकिन मेरे पिता ने क्रोध मे आकर नदी मे डूब जाने की धमकी दी थी। मगर सेना के जाने के बाद वह फिर धीरे-धीरे मेरे पिता से झगड़ने लगी।

"मैं तुमसे कह देती हूं, इसका परिणाम अच्छा न होगा, तुम अपनी नौकरी से हाथ धो बैठोगे!"

"और वह जो बेचारा अपनी जान से हाथ धो बैठेगा उसका कोई ख्याल नही है?"

"जैसे उसकी करतूत, वैसा वह फल पाएगा। क्यों उसने ऐसा किया?"

"उसने कहा कुछ किया था। जब राजाजी की बहिन ही उसपर मोहित हो गई तो वह क्या करता।"

"क्या करता?" मेरी मां क्रोध से बोलीं। "उसे मना कर देता। राजा राजा है, नौकर नौकर है फिर वह हिन्दू, वह मुसलमान—इसका परिणाम कभी अच्छा नही हो सकता। इससे दोनों का धर्म भ्रष्ट होता है।"

"प्रेम धर्म नहीं देखता।"

"तुम तो नास्तिक हो, मैं तो समझी थी कि तुम आर्यसमाजी हो। तुम एक मुसलमान को अपने घर में शरण दोगे। लेकिन तुम तो आर्यसमाजियो से भी गए-बीते हो। तुम तो पक्के नास्तिक हो!"

"मित्रता भी तो कोई चीज़ है।"

"और धर्म कोई चीज़ नही है? अपने धर्म का तो तुम्हे कोई ख्याल नही

है, उसकी यह हिम्मत कि तुम्हारे राजा की बहिन से प्यार करने चला है और तुम्हारी यह गैरत कि उसे घर में शरण दे रहे हो ?"

"जानकी !" मेरे पिता ने अपने बिस्तर से उठकर ज़ोर से मेरी मां की बांह पकड़ ली और उसे समझाते हुए बोले, "तुम नही जानती हो। मित्रता भी एक मज़हब है। वह स्वयं एक धर्म है। उसके अपने नियम है, जिस प्रकार तुम्हारे धर्म के नियम हैं।"

मेरी मा ने अपनी बांह छुडाते हुए कहा, "होगे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि तुम अपने धर्म के नियमों को मेरे धर्म के नियमो पर लाद दो। जिस मन्दिर में मैं तुम्हें स्नान किए बिना नही जाने देती, उसी मन्दिर में तुमने अपने मुसलमान मित्र को छिपा दिया है। न जाने भगवान मुझे इसकी क्या सजा देंगे। क्योंकि मैंने उनका मन्दिर भ्रष्ट कर दिया है। जीवन-भर जो काम मैंने कभी नही किया था, तुमने वह भी मुझसे करवा लिया…।"

मेरी मा रोने लगी। पिताजी उसे दिलासा देने लगे, "चन्द दिनों की बात है। इसके बाद जब मामला जरा ठंडा पड़ेगा, पुलिस और फौज की दौड़-धूप कम होगी वह खुद ही हमारा घर छोड देगा और इस इलाके से भाग जाएगा ! यहा रहकर तो उसकी जान को भी तो खतरा है।"

"उसकी जान ही को नहीं, तुम्हारी जान को भी खतरा है। यह मत भूलो कि तुम भी राजाजी के नौकर हो और नौकर होते हुए दर-पर्दा उनसे विश्वास-घात कर रहे हो ! मैं अब तुमसे ज्यादा नही कहती। बस, इतना कहती हूं, अपने दोस्त से कह दो कि सक्रांति से पहले वह यहां से अपना मुह काला कर जाए…संक्रांति के दिन मैं इस मन्दिर को गंगाजल से धोकर पवित्र करूंगी और मिसिरजी को बुलाकर इक्कीस दिन की कथा रखूगी, यज्ञ करूंगी, हवन करूंगी। प्रायश्चित का भोग इक्कीस ब्राह्मणो को खिलाऊंगी। जब जाके कही मेरे हृदय को शान्ति मिलेगी।"

दूसरे कमरे मे कुछ आहट-सी हुई। मेरे पिताजी ने घबराकर कहा, "आहिस्ता बोलो, आहिस्ता बोलो, कहीं वह सुन न ले।"

"सुन ले तो अच्छा है।" मा और भी झुंझला के ऊंची आवाज में बोली।

"शी-शी—" कहकर मेरे पिता ने मेरी मां के मुंह पर हाथ रख दिया फिर उन्होंने फूंक मारकर लैम्प बुझा दिया।

साथवाले कमरे मे, जो पूजा का कमरा था, नियाज़ अहमद को छिपाया गया था। उस कमरे में फिर जरा-सी आहट हुई। फिर चारों तरफ खामोशी छा गई। इन दोनों कमरों के दरम्यान का दरवाज़ा दूसरी तरफ से बन्द था। रोशनदान ज़रा-सा खुला था। पिताजी ने मा से कहा, "कल सवेरे इस रोशनदान के शीशे पर स्याही फ़ेरकर इसे भी बन्द करा दे।"

"बहुत अच्छा" मेरी मां ने धीमे-से स्वर मे कहा। फिर वह सोने से पहले मुंह ही मुंह में कोई मन्त्र-जाप करने लगी। यह उनका रोज का नियम था।

दूसरे दिन मेरी मां सबसे पहले सुबह उठ गई। अभी नौकर लोग सोए पडे थे कि उन्होने नियाज़ अहमद के लिए चाय और नाश्ते का सामान तैयार कर लिया और सब कुछ एक ट्रे मे सजाकर पूजा के कमरे में ले गईं। मगर फिर फौरन ही लौट आईं, जल्दी-जल्दी बैड रूम में आकर उन्होने मेरे पिता को जगाया। और उनसे कुछ कहा। दोनों के चेहरे पर हवाइया उड़ने लगी। मेरे पिता जल्दी-जल्दी बिस्तर से बाहर निकले और पाजामे का इजारबन्द उड़सते हुए बोले, "किधर? कहां? कैसे?"

मेरी मां बोली, "तुम खुद चलकर देख लो।"

पिताजी भागे-भागे पूजा के कमरे मे गए मगर वहां कोई न था। पूजा के कमरे मे नियाज़ अहमद कही न था। कमरे के पिछवाड़े की एक खिड़की खुली थी। रात के अंधेरे में खिड़की खोलकर वह फरार हो गया था...

उस दिन सुबह आठ बजे के करीब दुर्गाकार थाने की सीढ़ियों के नीचे कच्ची सड़क पर, जो नदी को जाती थी, नियाज अहमद की लाश पाई गई। किसीने उसे मारकर उसकी लाश के चार टुकड़े कर दिए थे और कोई ज़िन्दा या मुर्दा उसकी गिरफ्तारी का इनाम लेने के लिए भी नही आया था।

मेरे पिता उस वक्त नहा-धोकर कपड़े बदलकर नाश्ता कर रहे थे। जब अस्पताल के चपरासी ने उन्हे आकर सूचना दी कि नियाज़ अहमद की लाश पोस्ट मार्टम के लिए लाशघर मे आ चुकी है। पिताजी ने घूरकर क्रोधित नज़रो से मेरी मां की ओर देखा और मां ने भयभीत होकर अपनी नज़रें झुका ली। पिताजी नाश्ता खाए बिना कमरे से बाहर निकल गए और मां के हाथ से चाय का प्याला गिरकर फर्श पर टूट गया और वह कुर्सी पर झुककर रोने लगी।

दो दिन तक मेरे पिताजी ने खाना नहीं खाया और कई दिन तक उन्होंने मेरी मां से बात नही की। फिर संक्रांति आ गई और मैं हमेशा की तरह सतनाजे में तुला और मेरी कोरी धोती मिसिरजी को दे दी गई। और मां मुझे गुरुद्वारे ले गईं। फिर गुरुद्वारे के बाहर के मन्दिर में हमने घंटे बजाए और फिर हम वहां से शाह मुराद के मजार की ओर चल दिए···लेकिन आज मेरी मां बहुत उदास थीं और थोड़ी-थोड़ी देर बाद न जाने क्या सोचकर उनकी पलकें भीग जाती थीं।

जब हम ढक्की उतरकर शाह मुराद के मज़ार के निकट पहुंचे तो क्या देखा कि मज़ार के करीब की सुनसान पगडंडी पर शाही महल की एक पालकी रखी है और उसके गिर्द चार कहार खडे है। मेरी मां शाही डोली को देखकर वहीं ठिठक गईं। वे मुझे लेकर चकरी के एक वृक्ष की ओट में हो गईं। और देर तक चुपचाप खड़ी रहीं। आखिर उन्होंने मुझसे धीमे स्वर में कहा, "तू बच्चा है, तुझे शाही महल के कहार जाने देंगे। जाके देख तो सही मज़ार पर क्या हो रहा है।" मां वहीं चकरी के वृक्ष की ओट में छिपी खड़ी रहीं। मैं उनकी आज्ञा पाते ही बगटट भागा और पांव से कंकड उड़ाता पत्थरों को ठोकरें मारता हुआ मज़ार की तरफ दौड़ता हुआ चला गया, जिधर घनी बेरियों का झाड़ था। कहारों ने तो मुझसे कुछ नहीं कहा लेकिन जर्रे ने मुझे दूर से देख लिया और उसने मुझे देखते ही इशारे से वहीं रुक जाने को कहा। मैं वहीं झाड़ी के करीब दुबक गया। मैंने समझा यह भी जर्रे का कोई नया खेल है। चुपके से जर्रा मेरे पास आकर आहिस्ता से बोला, "मज़ार पर कोई नही जा सकता इस वक्त।"

"क्यों?" मैंने धीरे से पूछा। जर्रे ने मेरी बात का कोई उत्तर नही दिया। बस इतना कहा, "मगर मैं तुमको ले चलूंगा।"

"कैसे?" मैंने फिर पूछा। मगर जर्रे ने मेरी बात का कोई उत्तर नही दिया। वह मुझे सन्नथे की झाड़ियों के पीछे से घुटनों के बल चल-चलकर कहीं दौड़कर, कहीं दुबककर बेरियों की झाडियों के अन्दर ले आया। वहा पर हम दोनों दुबककर बैठ गए। और बेरियों की शाखाएं परे करके देखने लगे।

चाचो रमज़ानी मज़ार के करीब बैठे थे। उनके सामने सफेद बुरके मे एक औरत खड़ी थी। उसने अपने बुरके की नकाब नही उलटाई हुई थी बल्कि

अपना चेहरा ढांपे खडी थी ।

"शाही महल की रानी होगी" मैने धीरे से कहा और मेरी आंखें फटी की फटी रह गईं । क्योकि हमारे यहां बुरका केवल मुसलमान औरतें ही पहनती हैं और वह भी काला बुरका । सफेद बुरका केवल हिंदू औरते पहनती है और वह भी केवल वही औरते जो शाही परिवार से सम्बंध रखती है ।

चाचा रमज़ानी की घिग्घी बधी हुई थी और वह फटी-फटी निगाहो से सफेद बुरकेवाली औरत की तरफ देख रहा था और उसका तसबीहवाला हाथ कांप रहा था ।

बुरकेवाली औरत ने आज्ञासूचक स्वर मे उससे कहा :

"और तुम मेरे आने का किसीसे ज़िक्र नही करोगे ।" रमज़ानी ने इन्कार मे सर हिलाया ।

"और तुम सब नज़र नियाज़ दोगे ।" रमज़ानी ने हां मे सर हिलाया ।

"और तुम कब्र पर रोज दिया जलाओगे, फूल चढ़ाओगे और वह सब काम करोगे जो इस सम्बन्ध में किए जाते हैं ।"

रमज़ानी ने फिर हां मे सर हिलाया ।

सफेद बुरकेवाली औरत देर तक बुरके के अन्दर से रमजानी को घूरती रही, फिर बुरके के एक कोने से दो-तीन पतली-पतली नाजुक महीन-सी अगुलियां पल-भर के लिए बाहर निकली और फिर बुरके मे छिप गईं । और सौ-सौ के कई नोट रमज़ानी की झोली मे गिर पड़े ।

रमज़ानी जल्दी-जल्दी तसबीह फेरने लगा ।

"कब्र कहां है ?" उस औरत ने उसी तरह आज्ञासूचक स्वर में फिर पूछा ।

चाचा रमज़ानी आंख के कोने से केवल एक इशारा ही कर सका । मगर उस औरत ने सब कुछ समझ लिया । और वह बड़े मजबूत कदमों से चलती हुई मज़ार की सीढियां उतरकर कब्रिस्तान मे चली गई—जहां एक कच्ची कब्र की तरफ चाचा रमज़ानी ने आंख से इशारा किया था । अब मैं और जर्री भी उधर कब्रिस्तान की ओर देखने लगे जिधर वह औरत गई थी ।

वह औरत उस कच्ची कब्र के करीब जाकर रुक गई । देर तक वह वही खामोश खड़ी रही । फिर यकायक उस कब्र पर गिड़ पड़ी । उसके दोनो हाथ कब्र पर फैल गए और उन हाथो की अंगुलियां कब्र पर इस तरह तड़पने लगी

जैसे वहुत ही पतले पानी में मछलियां तड़पती हैं।

फिर वे अंगुलियां भी गतिहीन हो गईं और यकायक बेरियों में गहरा सन्नाटा हो गया और मज़ार पर अंधेरा फैल गया। और चाचा रमज़ानी की तसबीह के दाने कांपने लगे। और मैं और जर्रा आश्चर्य और भय से एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे।

एक लम्बी खामोशी के वाद वह औरत वहां से उठी लेकिन अब उसके कदम लडखड़ा रहे थे और उसका दूध की तरह सफेद बुरका भूरी मिट्टी में सना हुआ था और वह तेज़-तेज कदमों से चलती हुई कब्र से पलट आई। हाफती, कांपती, दौड़ती, भागती वह झाड़ियो, चट्टानों से उलझती हुई मज़ार के ऊपर की पगडंडी पर पहुंच गई और किसीसे कुछ कहे बिना उस पालकी पर बैठ गई।

कहारो ने पालकी का पर्दा गिरा दिया और डोली उठाकर चल दिए और चन्द क्षणो में हमारी नज़रों से ओझल हो गए।

नीला दांत

एक दिन मजीद अर्दली बीमार पड़ गया तो उसका बेटा कासिम उसकी छुट्टी का प्रार्थनापत्र लेकर पिताजी के पास अस्पताल मे आया और जब मेरे पिताजी ने मजीद अर्दली का प्रार्थनापत्र स्वीकृत कर लिया तो कासिम मुझे और तारा को नीचे बाग मे खेलते देखकर हमारे पास आ गया।

कासिम आयु मे मुझसे कोई तीन वर्ष बडा था। शक्ति मे दुगुना था और कद में भी ऊचा था। उसके बाल भूरे और कडे थे। चेहरे का रंग पालिश किए तावे की तरह था। उसने गाढ़े के पाजामे के ऊपर गाढ़े की एक कमीज़ पहन रखी थी और उसके ऊपर भूरे पट्टू की सदरी पहन रखी थी जो ऐसी मालूम होती थी, जैसे उसके सिर के घने-भूरे बालो से तैयार की गई है।

परन्तु कासिम को अपने भूरे बालो और शक्ति पर इतना गर्व न था, जितना उसे अपने नीले दांत पर गर्व था। कासिम के सामने के दातों मे एक दांत नीला था और वह सारे प्रदेश में एक ही ऐसा लड़का था जो एक नीला दांत रखता था। सफेद दांत तो सब लड़के रखते हैं, परन्तु नीला दांत उसके अतिरिक्त और किसी लड़के के पास न था। लड़का क्या, कोई पुरुष या स्त्री अपनी बत्तीसी मे एक नीला दांत दिखा दे?—कासिम बड़े गर्व से प्रायः चैलेन्ज करता और सुननेवाले उसके चैलेन्ज को सिर झुकाकर सुन लेते, क्योंकि वास्तव मे उनमे से किसीके पास नीला दांत न था।

इस नीले दांत की भी एक कहानी है। कासिम का यह दांत आरम्भ से नीला न था, बल्कि दूसरे दांतों के समान सफेद था। इस दांत में दूसरे दांतों से कोई बढ़िया या विचित्र बात न थी। परन्तु एक दिन कासिम की अपने दो भाइयो से लड़ाई हो गई, जो अलग-अलग तो उससे तगड़े नही थे लेकिन दोनों

मिलकर उससे तगडे थे। अतः बड़ी भयंकर लडाई लड़ी गई—लातों से, घूंसों से, मुक्कों से, और अन्त में पत्थरों से। इस लड़ाई के बीच कासिम के मुंह पर एक पत्थर पडा। सौभाग्यवश उस समय कासिम का मुंह खुला था, वर्ना उसके दोनो होंठ कट जाते। पत्थर का सारा जोर और दवाव सामने के दांतो पर पड़ा। पत्थर की मार खाते ही कासिम को ऐसा लगा जैसे उसका सारा जबडा हिल गया हो और उसके मसूड़ों से रक्त प्रवाहित हो गया। कासिम के मुंह से रक्त वहता देखकर वे दोनो लड़के भाग गए और कासिम गिर जाने के वजाय पहले तो निकट के चश्मे पर गया और देर तक ठंडे पानी की कुल्लियां करता रहा, फिर जब रक्त वन्द हो गया तो वह अपने सूजे हुए जवड़े को लेकर दित्ते चरवाहे के घर गया, जो उसका मित्र था। और उसे अपने दांत दिखाए। दित्ते ने उसके जवड़े, मसूड़े और दांतों को ध्यान से देखा और वड़े आत्मविश्वास से कहा :

"केवल तीन दांत सामने के हिलते हैं। यदि तू डागडर के पास जाएगा तो वह तेरे वत्तीसों दांत निकाल डालेगा। पर यदि तू मेरा लेप करे तो तेरे वत्तीसो दांत सलामत रहेगे।"

कासिम बोला, "डागडर तो अलग रहा, इस समय यदि मैं इस दशा में घर गया तो मेरे अव्वा मुझे मार-मारकर मेरे तीनों दांत निकाल देंगे। इसलिए अच्छा यही है कि तू अपना लेप मुझे दे दे।"

अतः दित्ते चरवाहे ने अपने मित्र कासिम को घर मे विठाया और स्वयं वाहर जंगल से जडी-वूटियां लाने चला गया। कुछ समय के पश्चात् वह तीन-चार प्रकार के पौधे जड़ोसमेत उखाड़ लाया। उन्हे पानी से धोकर उसने लेप तैयार किया और उसे क़ासिम के मुंह के अन्दर दांतो और मसूडों पर लगा दिया। दिन मे दो वार उसने इस लेप को वदला। फिर जव शाम होने लगी तो उसने तीसरी वार लेप लगाकर कहा, "अव तू मजे से घर चला जा। किन्तु रात को कोई वहाना करके रोटी न खाना। सुवह तक तेरा जवड़ा विलकुल ठीक हो जाएगा।"

और वाकई दूसरे दिन कासिम के जवडे की सूजन बिलकुल उतर चुकी थी। उसके मसूड़े ठीक दशा मे थे और वे तीनो दांत अव नही हिलते थे। परन्तु सामने के तीनो मे से वीच का दांत विलकुल नीला हो गया था। अब मालूम

नहीं यह उस लेप का प्रभाव था या पत्थर की चोट का प्रभाव था। किन्तु यह एक वास्तविकता है कि इस घटना के पश्चात् कासिम का यह दात नीला ही रहा। इस घटना के पश्चात् वहुत-से दूसरे लड़कों ने पत्थर की चोट खाने के पश्चात् दित्ते चरवाहे का वही लेप लगाया, किन्तु किसीका दांत नीला न हुआ। कासिम के साथियों का यदि वस चलता तो पत्थर मार-मारकर अपने सारे दांत नीले कर लेते। परन्तु दुवारा यह ईश्वरीय देन किसी लड़के को नसीव न हुई और कासिम भाग्यशाली लडका था जिसका दांत नीला था।

कासिम वड़े घमंड और गर्व से अपना नीला दात दिखाता हुआ हमारे पास आया। तारां उसके नीले दांत को देखकर बहुत प्रभावित हो गई। प्रशंसात्मक दृष्टि से उसकी ओर देखकर बोली, "हाय ! इसका यह दांत कितना खूवसूरत है !"

मैंने जलकर कहा, "मेरे चचा के लड़के के मुंह में तीन भिन्न रंगों के दांत हैं। एक लाल है, एक हरा है, एक नीला है।"

"वह लड़का कहा है ?" कासिम ने पूछा।

"वह लड़का पंजाव मे है।" मैंने झूठ बोलते हुए कहा।

"पंजाव में है ! हा…हा…हा !!" कासिम ज़ोर-ज़ोर से हंसकर अपने नीले दांत का और भी प्रदर्शन करते हुए बोला, "पंजाव मे है, पर यहां तो नहीं है !"

इसपर तारां को और प्रसन्न करने के लिए कासिम ने अपने भूरे पट्टू की सदरी की जेव से लकड़ी का आरगन-सा निकाला और उसे दोनो हथेलियो में दवाकर वजाने लगा। वड़ा विचित्र वाजा था ! लकडी का था और उसने स्वयं वनाया था। और उसमें से ऐसी आवाज़ें निकलती थी जैसे तीन भिन्न सुरो की वांसुरियां एक साथ वज रही हो।

"यह वाजा मैं लूंगी।" तारा प्रसन्नता से चिल्लाई।

कासिम ने वाजा जेव में रखते हुए कहा, "मैं तुम्हे नया वना दूंगा। यह अब पुराना हो गया है और मेरा जूठा है।"

इसके पश्चात् कासिम ने अपने कन्धे से अपने पालतू तोते को उतारा और उसे अंगूठे पर नचाते हुए वोला, "कह अल्लाह-मल्लाह !"

तोता वोला, "अल्लाह-अल्लाह !"

इसके पश्चात् तो तारां ने अपना मुंह मेरी ओर से बिलकुल फेर लिया और कासिम की ओर प्रशंसात्मक दृष्टि से देखते हुए बोली, "मैं तो कासिम से शादी करूंगी।"

"कासिम तो मुसलमान है।" मैंने जलकर कहा।

"मुसलमान है तो क्या हुआ ?" तारा ने अपनी चुटिया झुलाते हुए और अपनी उंगलियां नचाते हुए बड़े गर्व से कहा, "उसके पास एक नीला दांत है। एक लकड़ी का बाजा है। एक पालतू तोता है, जो अल्ला-अल्ला कहता है। तुम्हारे पास क्या है ?"

मैंने कहा, "मेरे पास बैडमिंटन की चिड़िया है।"

"ऊंह ! मुई, मुर्दा बत्तख के परों से काटकर बनाई गई है तुम्हारी चिडिया, जो बल्ले के ज़ोर से इधर-उधर उड़ती है। क्या तुम्हारी बडमुण्डन की चिड़िया अल्ला-अल्ला कह सकती है ?"

मैं निरुत्तर हो गया और बात पलटने के लिए कासिम से पूछने लगा, "यह तोता उड़ता क्यो नहीं है ?"

कासिम ने कहा, "यह पालतू है। मैंने इसके पर अन्दर से काट रखे हैं। इसलिए यह दूर तक उड़कर नही जा सकता।"

"मैं तो कासिम के संग खेलूगी, तुम्हारे संग नही।" तारां ने मुझे छोड़ दिया और कासिम का हाथ पकडकर आगे-आगे चलने लगी।

मैं क्रोध से खौलता हुआ उन दोनों के पीछे-पीछे चलने लगा। दो बार मैंने अपनी जेब में हाथ डाला और तीसरी बार हाथ डालकर तारा से कहा, "मुझसे खेलो, मैं तुम्हे चवन्नी दूंगा।"

कासिम लकड़ी का जेबी आरगन बजाने लगा। तोता कहने लगा, "अल्लाह-अल्लाह !"

"उंह ! घर रखो अपनी चवन्नी !" तारां ने यह कहकर मेरी हथेली ज़ोर से उलटा दी और कासिम के साथ चली गई। मैं क्रोध मे जलता-भुनता आंखों में आंसू लिए अपने घर चला आया और किचन मे आकर जगतसिंह से कहने लगा :

"मुझे ऐसा तोता ला दो जो अल्ला-अल्ला करता हो।"

"जो वाह गुरु, वाह गुरु करता हो ?" जगतसिंह ने पूछा, "जो राम-राम

करता हो ?"

"नही, जो अल्ला-अल्ला करता हो," मैंने ज़िद करते हुए कहा, "और यदि ऐसा तोता मुझे नही लाकर दोगे, तो मैं आज खाना नही खाऊंगा।"

अतः खाना खाने का समय गुज़र गया और मैंने खाना नहीं खाया। पिताजी ने मुझे देर तक समझाया। किन्तु जब मैं नहीं माना तो वे हारकर अस्पताल चले गए। उनके जाने के पश्चात्, जैसाकि मुझे मालूम था, मांजी ने मुझे दो-तीन तमाचे लगा दिए। किन्तु मैं मार खाकर भी ज़िद करता रहा और खाना खाने से इन्कार करता रहा। अन्त मे जगतसिंह को एक बढ़िया तरकीव सूझी। वह मुझे पुचकारते हुए बोला, "तू खाना खा ले। फिर मैं तुझे कोया चिड़िया दूगा।"

कोया चिड़िया एक लम्बी गर्दन की चिड़िया होती है। गर्दन का रंग खाकी होता है और पर भी खाकी रग के होते है। परन्तु पीठ लाल रंग की होती है और दुम ऊदे और गहरे नीले परों की होती है। और सुबह के समय जब वह किसी पेड पर गाती है तो ऐसा मालूम होता है जैसे कही पियानो वज रहा हो। कोया चिड़िया का आकर्षक शरीर और उसका मधुर राग मस्तिष्क में आते ही मेरे आंसू रुकने लगे। मैंने देखा कि मेरे कन्धे पर कोया चिड़िया वैठी है। ऐसा मधुर राग गा रही है जिसे सुनकर कासिम और तारां दोनों लज्जित हो रहे हैं।

मैंने अपने आंसुओं मे मुस्कराते हुए कहा, "पर कोया चिड़िया कहां से मिलेगी ?" खाना खाने से पहले मैं अपना विश्वास दृढ़ कर लेना चाहता था।

"अरे वह कम्बख्त तो हर रोज़ किचन मे आती है," जगतसिंह बड़ी व्यग्रता से वोला, "घोंसला बनाने की चिन्ता में है। प्रतिदिन ऊपर के रोशनदान में तीलियां, घास-फूस, पत्ते, अला-वला जमा करती जाती है और प्रतिदिन मैं उसे साफ करता जाता हूं। माजी मुझे चिड़िया मारने नहीं देती, वरना मैंने अब तक उस कम्वख्त का सफाया कर दिया होता। अव सोचता हूं, आज या कल किचन के दरवाज़े चारों ओर से वंद करके पकड़ लूंगा और उसके पर काटकर तुम्हे दे दूंगा। फिर वह तुम्हारे कन्धे पर वैठकर मधुर गीत गाया करेगी।"

"हां, यह ठीक है," मैंने मुस्कराकर कहा, "पर आज ही पकड़ दो।"

"आज ही पकड़ दूगा। पर तुम खाना तो खाओ।" इतना कहकर जगतसिंह

ने विजयगर्व की दृष्टि से मांजी की ओर देखा। और मांजी मुस्कराते हुए, मुझे प्यार करते, पुचकारते हुए खाने की मेज़ पर ले गईं।

तीसरे पहर मैं जब बाग में अकेला घूमने से उकताकर वापस घर आया तो मैंने जगतसिंह से आते ही पूछा, "चिड़िया पकड़ी ?"

"हां, पकड़ी तो थी," जगतसिंह हांफता हुआ बोला, "और उसके पर भी काट डाले, पर कम्बख्त वह तड़पकर मेरे हाथो से निकल गई और अब सोने के कमरे मे जा छुपी। और मांजी घर पर नही हैं, और उनका आर्डर है कि जब तक वे घर पर न हों, कोई उनके सोने के कमरे मे न जाए।"

मैंने कहा, "मैं पकड़ता हूं।"

इतना कहकर मैं बेड-रूम मे चला गया। दरवाज़ा अन्दर से बंद कर लिया और खिड़की को भी देख लिया कि ठीक से बंद है, और रोशनदानों को भी। कोया चिड़िया वार्डरोब पर बैठी थी। मैंने पलंग पर चढ़कर वार्डरोब की तरफ हाथ फैलाया तो वह ज़रा-सी उड़कर सिंगार-मेज़ पर आ बैठी। मैंने वहां झपट्टा मारा तो तेल की शीशी उलट गई। चिड़िया उड़कर लकड़ी के उस आले पर आ बैठी, जिसपर पिताजी का ओवरकोट टंगा हुआ था। मैंने धीरे से एक कुर्सी को दीवार से लगाया और उसपर चढ़कर चिड़िया को पकड़ना चाहा तो लकड़ी का हुक ओवरकोट-समेत ज़मीन पर आ गिरा और चिड़िया उड़कर ताम्बे के उस गुलदान पर जा बैठी जो दो दीवारो के बीच एक कोने मे रखा हुआ था। एक ओर वार्डरोब था, एक तरफ पलग था। बीच के कोने मे मेज़ पर गुलदान था। अतः उस गुलदान पर वह कम्बख्त चिड़िया अपनी लम्बी गर्दन उठाए बैठी थी। मैंने अत्यन्त सावधानी से पलंग की मच्छरदानी गिरा दी और वार्डरोब का एक पट खोल दिया। अब चिड़िया दोनो तरफ से घिर गई। फिर मैं पलंग के अन्दर घुसकर मच्छरदानी के अन्दर धीरे से घुटनों के बल चलकर दूसरी तरफ निकल गया। यहा से मेज़ मेरे बहुत निकट थी।

अचानक मैंने ताम्बे के गुलदान की तरफ अपना हाथ बढाया। कोया चिड़िया ने जब मेरा हाथ अपने ऊपर आते देखा तो डरकर उसने अपनी आंखें बन्द कर ली और सहमकर अपनी गर्दन नीची करके अपने पैरो मे छुपा ली।

बहुत वर्षों के पश्चात् मैंने बहुत क्रोध में आकर अपने घर की नौकरानी पर हाथ उठाया, जिसने मेरा एक बहुत कीमती गुलदान तोड दिया था। जिसे मैंने अपनी चीन की यात्रा में बडी कठिनाई से प्राप्त किया था। मै क्रोध से भन्नाया हुआ उस नौकरानी के पीछे भागा और कमरे के चारो कोनो में उसका पीछा करता रहा। और अन्त में मैंने उसे एक कोने मे घेर लिया। और ज्योंही मैंने उसे मारने के लिए हाथ उठाया, वह डर से सहम गई और उसकी आखें स्वयमेव बन्द हो गईं और उसकी गर्दन नीचे को झुक गई।

और मुझे अपने बचपन की वह कोया चिड़िया याद आ गई, ज़िसे मैंने इसी प्रकार एक कोने में घेर लिया था। और मेरा ऊपर उठा हुआ हाथ रुक गया। और वही खड़े-खड़े मैंने सोचा, मुझे इस बेकस स्त्री को मारने का क्या अधिकार है जिसके पर गरीबी ने काट डाले हैं? इस बेचारी ने तो जान-बूझकर नही, घटनावश गुलदान तोडा है। किन्तु तुम उन लोगों पर हाथ क्यो नहीं उठाते जो दिन-रात लोगों के दिल तोड़ते हैं, उनका भविष्य तोड़ते हैं, और उनकी जीवित रहने की प्रत्येक अभिलाषा तोडते हैं। हाथ उठाओ उन निर्दयी परिस्थितियो पर और अत्याचारी व्यवस्था पर। गरीब, बेकस चिड़िया को मारने से क्या लाभ?

वह कोया चिड़िया प्रायः मेरे दिमाग के गुलदान पर आकर बैठती है और मुझे ज़िन्दगी का रास्ता बताती है।

सरताज

एक दिन समाचार मिला कि फज्जा डाकू मारा गया है और पुलिसवाले उसके शव को पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल में ला रहे है।

फज्जे ने काफी समय से रियासत की सीमावर्ती तहसील फतहगढ़ में विद्रोह फैला रखा था। और राजाजी ने उसकी लूटमार से तंग आकर घोषणा कर दी थी कि जो कोई व्यक्ति फज्जे का सिर काटकर उनके दरबार में पेश करेगा, उसे दस हज़ार रुपया नकद, खिलअत तथा जागीर इनाम में दी जाएगी। फतहगढ़ का सरदार मूसा खां बहुत दिनो से फज्जे की ताक मे था। और चारों ओर उसने अपने आदमी इस काम के लिए फैला रखे थे। एक दिन आधी रात के करीब जब फज्जा फतहगढ़ के किले के नीचे सरदार मूसा खां के गांव के निकट से गुज़र रहा था तो मूसा खां के आदमियों ने उसकी पीठ मे छः गोलियां मारकर उसकी हत्या कर दी और अब वह फज्जे की लाश को उठवाकर अपने समर्थको तथा शनाख्ती गवाहो के साथ सदर मुकाम पर आया था ताकि खिलअत, जागीर और दस हज़ार रुपया नकद वसूल कर सके।

सरदार मूसा खां अपने इस कार्य पर बेहद ही प्रसन्न था क्योंकि फज्जे ने जिसका असली नाम फैज़ मुहम्मद खां था, एक लम्बे समय से फतहगढ़ तथा दोहाला के इलाके मे उपद्रव मचा रखा था। फतहगढ़ का इलाका राजाजी की रियासत मे और दोहाला का इलाका अंग्रेज़ी सरकार के अधीन था। परन्तु लोग कहते हैं कि आज से एक सौ वर्ष पहले इन दोनों इलाको में गखड़ों का स्वतन्त्र राज्य था जोकि इन इलाको में आबाद थे। परन्तु इस स्वतन्त्र राज्य को एक ओर से अंग्रेज़ों ने और दूसरी ओर से राजाजी के दादाजी ने आक्रमण द्वारा खत्म कर दिया था। गखड इस दुमुखी आक्रमण के सामने न ठहर

सके और वीरता, बहादुरी तथा जीदारी से लड़ने के बावजूद हार गए। लेकिन हार जाने के बावजूद वास्तविकता यह है कि ये इलाके अभी भी पूर्ण रूप से वश मे नही लाए जा सके। उन इलाको मे आज तक सदैव कभी न कभी कोई विद्रोह होता ही रहता है। इसलिए अंग्रेजी सरकार ने दोहाला के स्थान पर एक बहुत बडी फौजी छावनी स्थापित की थी और इधर रियासती इलाके मे राजाजी की एक-तिहाई सेना फतहगढ के किले और दोहाला तथा कोट बलेर खां की गढ़ियो में गखड़ो को कुचलने के लिए सदैव प्रस्तुत रहती थी।

फज्जा अपने इलाके के लोगों में किसी प्रकार की लूटमार नहीं करता था। पहले तो वह दोहाला के इलाके में अपने विद्रोही गखडो के साथ पुलिस की चौकियों पर हमले करता रहा। लेकिन जब अंग्रेजी पुलिस ने उसका नातका बंद कर दिया और चारो ओर अपने जासूसो का जाल फैला दिया तो फज्जा सून दरिया पार करके रियासत के इलाके में चला आया। पहले तो केवल दोहाला के डिप्टी कमिश्नर ने उसकी गिरफ्तारी के लिए पांच हजार का इनाम रखा था। परंतु जब फज्जे ने एक दिन फतहगढ़ तहसील के खजाने को दिन-दहाड़े लूट लिया, तो इस घटना के बाद राजाजी भी उसकी जान के दुश्मन हो गए और उन्होने उसके सिर के लिए दस हजार का इनाम रख दिया। लेकिन इस इनाम के रखने के डेढ साल बाद भी फज्जा किसीके हाथ न आया और निरंतर अपने साहसी आक्रमणो मे व्यस्त रहा। यूं भी दोहाला और फतहगढ के इलाको में किसी डाकू को पकड़ना आसान नही है। यह इलाका कठिन रास्तों, ऊसर मैदानो तथा टेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ियो से भरपूर है जहां नंगी चट्टानो और सरकंडे की झाड़ियों के अतिरिक्त और कुछ नजर नही आता। पानी दुर्लभ है। वर्षा कम होती है। केवल कही-कही इक्का-दुक्का घाटियो में ज्वार, बाजरे या मकई की फसल होती है। यहां के लोग बेहद गरीब तथा परिश्रमी है और अपनी गरीबी के बावजूद अपने इलाके की आजादी पर जान देते हैं। प्रत्येक गाव मे गुप्त रूप से बंदूकें तैयार होती है जो गैरकानूनी तौर पर अंग्रेजी इलाके मे बेची जाती हैं और यही इन लोगो का सबसे बड़ा व्यापार है।

फज्जा कोट बलेरखा का रहनेवाला था और एक लोहार का बेटा था और बंदूक की नालिया बहुत ही उम्दा बनाता था। उसके हाथ की बनी हुई बंदूकें दूर-दूर तक जाती थी, इसी व्यापार के संबध में वह एक बार दोहाला के

करीब अपनी बंदूके बेचता हुआ पकड़ा गया और तीन साल के लिए जेल में डाल दिया गया। परंतु फज्जा बेहद बेचैन और विद्रोही स्वभाव का व्यक्ति था। डेढ साल जेल काटने के पश्चात् अंग्रेज़ी जेल से फरार हो गया और अपने इलाके की शरण लेकर डाकू बन गया।

शायद फज्जा अभी तक जीवित रहता यदि उसे खानम से प्रेम न हो गया होता। खानम सरदार मूसा की लड़की थी और सरदार मूसा खां फतहगढ़ का नम्बरदार था तथा अपने इलाके का सबसे वडा जमीदार था। सुना है कि वह इतनी सुन्दर थी कि रावलपिंडी और गूजरखां के अंग्रेजी इलाके तक से उसके विवाह के सदेश आते थे। फज्जा इसी खानम पर मर मिटा था।

फज्जे ने खानम को सबसे पहले सून के मेले मे देखा था। सून का मेला हर साल बरसात के मौसम में सून दरिया के किनारे होता है। एक तरफ रियासती इलाका दूसरी तरफ अंग्रेजी इलाका। बीच मे सून दरिया बहता है और यह मेला हर साल उसी स्थान पर होता है जहां सून दरिया के किनारे फतहगढ का किला स्थित है और दूसरी ओर मुराद का मज़ार स्थित है! यह मेला हर साल इसी मजार पर होता है और दोहाला और फतहगढ़ दोनों इलाकों के गखड़ अपनी बंदूको को छोड़कर, अपनी प्रतिद्वंद्विताओ को भूलकर और लड़ाई-झगडो को एक तरफ हटाकर शाह नजीर के मेले में शरीक होते हैं। सुना है कि इस मेले मे आज तक कभी कोई दंगा-फसाद नही हुआ। कभी कोई पुलिस का आदमी नही आया। यह गखड़ों का राष्ट्रीय पर्व है और इस दिन के लिए दूर-दूर के इलाकों के गखड़ इस स्थान पर पहुंचते है और ऊंच-नीच असमानता तथा व्यक्तिगत मतभेदों की समस्याओ को भूलकर अपनी राष्ट्रीय एकता की याद को ताज़ा करते है।

इस अवसर पर कुश्तियां होती हैं। पंजे लड़ाए जाते है। बीनियां पकड़ी जाती हैं। और सबसे आखिर मे तैराकी का मुकाबिला होता है। क्योंकि सून का दरिया भी तो अपने इलाके के लोगों की तरह उपद्रवी है और इस स्थान पर तो वह और भी खतरनाक हो जाता है। दोनो ओर ऊंची-ऊंची नंगी चट्टानों-वाली घाटियां खड़ी हैं, जिनको एक खतरनाक तेजी से काटता हुआ, सून दरिया पुल के नीचे से गुज़रता है। इसकी दीवारें एक ओर तो फतहगढ़ के किले से मिल जाती हैं और दूसरी ओर अंग्रेज़ी इलाके की कस्टम की चौकी

पर समाप्त होती हैं। यहां पर सून दरिया का प्रवाह सबसे तेज़ है। और भरी बरसात में जब यह मेला होता है उन दिनों सून के तंग पाट का प्रवाह और उसकी फेन-भरी लहरों का क्रोध देखने योग्य होता है। ऐसा लगता है कि यदि हजारो मन वज़नी चट्टान भी इस पानी के प्रवाह के सामने आएगी तो घास के तिनके की तरह बह जाएगी। इन तूफानी पानियो मे तैरना जीते जी मृत्यु को निमन्त्रण देना है। परन्तु गखड़ युवक हर साल खुशी-खुशी इस खतरनाक तैराकी के मुकाबले में भाग लेते हैं। कई बार कई तैराक इन उपद्रवी लहरों के सामने न ठहर पाकर उनके थपेड़ो से पार न जा सके और वापस भी न आ सके, बल्कि पानी की लहरों मे यू बह गए कि दूसरे दिन दस मील के फासले पर नीचे की किसी घाटी के किनारे उनकी लाश मिली। फिर भी नवयुवकों को तैराकी का यह मुकाबला सबसे अधिक प्रिय है। क्योंकि इस प्रतियोगिता में प्रथम आनेवाले को गखड़ जाति का हीरो समझा जाता है। हर साल सात नवयुवको की एक टोली फतहगढ के किले की दीवारो के नीचे उस पार जाने के लिए खडी रहती है। और सात नवयुवको की टोली दोहाला के किनारे से इधर आने के लिए खडी रहती है। एक सकेत पर दोनो तरफ के नवयुवक पानी मे कूद पड़ते हैं और जो नवयुवक सबसे पहले इधर से उधर या उधर से इधर किनारे पर पहुंचता है, उसे चांदी की मूठवाली राष्ट्रीय कटार इनाम में दी जाती है। और यह रस्म बड़ी दिलचस्प होती है। सबसे पहले तैरकर आनेवाला नवयुवक किनारे पर खड़े हुए सरपंच या मुकद्दम के पास जाकर उसके प्रति अपना आदर-भाव प्रदर्शित करता है। मुकद्दम उसे गले से लगा लेता है और उसका माथा चूमकर उसे राष्ट्रीय कटार प्रस्तुत करता है, जिसे लेकर नवयुवक दो कदम पीछे हटता है और फिर कटार को उठाकर मुकद्दम को फौजी सलाम करता है। फिर मुकद्दम कहता है :

"बोल जवान और क्या चाहिए ?" इस प्रश्न के उत्तर मे युवक कहता है, "शाह नज़ीर का साया और मुकद्दम की दुआ चाहिए।"

इतना कहकर नवयुवक सिर झुका लेता है।

फिर मुकद्दम आगे बढ़ता है और वह नवयुवक के कंधे पर चादर डाल देता है, जिसे नवयुवक अपने दोनो हाथो से फैला देता है। इसपर वह मुकद्दम उस फैली हुई चादर मे नकद इनाम डाल देता है, जो हमेशा एक सौ ग्यारह

होता है।

हमेशा हर साल इसी प्रकार होता है। इसी प्रकार के सवाल-जवाब होते हैं। जीतनेवाला मुकद्दम के प्रति अपना आदर-भाव प्रदर्शित करता है। मुकद्दम आगे बढ़कर उसे गले से लगाता है। उसे राष्ट्रीय कटार प्रस्तुत करता है। नवयुवक फौजी सलाम करता है। मुकद्दम पूछता है, "बोल जवान और क्या चाहिए।" जवान कहता है, "शाह नजीर का साया और मुकद्दम की दुआ चाहिए!" इसपर मुकद्दम नवयुवक के गले मे चादर डाल देता है। नवयुवक चादर को अपने दोनों हाथों से फैलाकर खामोशी से सिर झुकाता है तो मुकद्दम उसकी फैली हुई चादर मे एक सौ ग्यारह रुपये डाल देता है और ढोल-ताशे बजने लगते और गखड नवयुवक शोर मचाते हुए आते हैं और अपने हीरो को उठाकर नृत्य करने लगते है। शताब्दियो से इसी प्रकार होता आ रहा है।

मगर जिस साल फज्जे ने तैराकी की प्रतियोगिता में भाग लिया उस साल मेले से सात दिन पहले असामान्य रूप से ज़ोर की वर्षा होती रही थी और बडी-बूढ़ियो को भी याद न था कि इस इलाके में इस ज़ोर की वर्षा पहले कभी हुई थी। सून दरिया का पानी पुल से केवल चन्द गज नीचे रह गया था और चट्टानों से ऊपर किले की दीवारो से टकराता था और दूसरी ओर शाह नजीर के चबूतरे तक पहुंच गया था।

उस साल फज्जे ने जेल से भागकर अपने इलाके में शरण ली थी। अब तक वह दो बार पुलिस चौकियो पर हमला कर चुका था। और गखड़ नवयुवको मे ख्याति फैलनी शुरू हो गई थी।

उसी साल उसी मेले मे फज्जे ने खानम को देखा जो सरदार मूसा की एकलौती लड़की थी और अपने इलाके की सबसे सुन्दर युवती समझी जाती थी। लम्बे कदवाली, काली अखियोवाली, लम्बे बालोवाली, भरपूर जवानीवाली खानम मेले मे जिस तरफ गुज़रती थी नवयुवकों के दिल धक् से रह जाते थे, सन्नाटे मे आकर रह जाते थे। ऐसा गम्भीर एवं तेजस्वी सौन्दर्य उन्होने आज तक अपने इलाके की किसी औरत में न देखा था। खानम को इस मेले मे जिसने देखा वह सीने पर हाथ रखकर रह गया। फज्जा यद्यपि स्वयं एक सुन्दर एवं पुष्ट जवान था। कद छः फुट से निकलता हुआ, रंग सांवला, सीना चौडा और शरीर इतना पुष्ट जैसे उसके देश की सावली पहाड़ियो की किसी

नंगी चट्टान से तराशा गया हो। मगर जैसे ही उसने खानम को देखा उसका चेहरा एकदम पीला पड़ गया। उसका श्वास उसके सीने मे रुकने लगा। खानम ने एक सधी, सपाट, खुली और निडर निगाह उसपर डाली और अपनी सहेलियों के साथ आगे बढ़ गई। और यकायक फज्जे को ऐसा लगा जैसे सूर्य पर छाया-सी पड़ गई हो।

उसने अपने दिल में महसूस किया कि उसे तैराकी की प्रतियोगिता में भाग लेना चाहिए। यद्यपि इस मेले मे पुलिस के बहुत-से जासूस होंगे और उसके मित्रो ने इस प्रतियोगिता मे भाग लेने से मना किया था और वह अपनी सुरक्षा की खातिर उनकी वात मान भी गया था, मगर खानम को देखकर न जाने क्यो उसके दिल मे तैराकी की प्रतियोगिता मे भाग लेने की इच्छा तीव्र होती गई। और ज्योंही तैराकी के मुकाबले के लिए ढोल बजने लगे वह लंगोट बाधकर मैदान में आ गया और उसने मित्र शाहनवाजखा को हटाकर उसकी जगह तैराकी के मुकावले में स्वयं ले ली। फज्जा उसका सरदार तथा नेता था इसलिए शाहनवाज़ मुकावले से हट गया और उसने अपनी जगह फज्जे को दे दी।

लेकिन पानी का प्रवाह इस कदर तेज़ था और सून का धारा इस कदर खतरनाक थी कि फतहगढ के किनारे से इधर आनेवाले तैराको मे एक भी शाह नज़ीर के चबूतरे तक न पहुंच सका और इधर से फतहगढ जानेवाले तैराकों मे से केवल दो युवक रियासती इलाके के किनारे तक पहुंच सके! जहां सरदार मूसा खा मुकद्दम की हैसियत से उनके आदर-सत्कार के लिए उपस्थित था, उसके पीछे उसकी बेटी खानम खड़ी थी। और उसके गाव के लोग और पुल पारकर दोहाला के इलाके के लोग भी ढोल बजाते हुए इस रस्म को देखने के लिए आ गए थे।

फज्जा सवसे पहले नम्वर पर आया था। उसके टखनों से लहू वह रहा था और उसका सीना धौंकनी की तरह हिल रहा था, मगर वह अपने लगोट को कसता हुआ, हंसता हुआ अपने भीगे हाथो से अपने भीगे चेहरे को पोछता हुआ सरदार मूसा खां के सामने भागकर चला गया। निकट जाकर उसने अपना आदर-भाव प्रदर्शित किया।

मूसा खां ने उसे अपने गले से लगाया। उसके भीगे हुए माथे को चूमा जिसपर

भीगे हुए बालों की लटें पड़ी थी। फिर उसने अपनी कमर से राष्ट्रीय कटार निकालकर फज्जे के हाथ में दी। फज्जे ने दो कदम पीछे हटकर कटार को हाथ में उठाकर अपनी दोनों एड़ियां मिलाकर मुकद्दम को फौजी सलाम किया।

सरदार मूसा खां ने पूछा, "बोल जवान और क्या चाहिए।"

"शाह नज़ीर का साया और खानम का हाथ।" फज्जे के मुंह से निकला। उसकी सीधी-साफ निगाह खानम पर थी। खानम ने चौंककर लम्बे कदवाले फज्जे को सर से पांव तक देखा फिर उसकी आंखें लज्जा से झुक गई और उसकी जैतूनी रंगत गुलाब की तरह सुर्ख हो गई।

एकदम सैकड़ों लोगों के चेहरे फक हो गए। यह कौन निर्लज्ज था जिसने पुरखों की पुरानी रस्म को तोड़ा था। यूं और यूं एक क्षण मे फतहगढ़ के सबसे बड़े सरदार का भरे मेले में अपमान कर डाला था। और यूं सबके सामने उसकी बेटी मांग ली थी।

"फज्जे! तेरी यह हिम्मत?" सरदार मूसा खां गुस्से से गरजा। "एक मामूली डाकू होकर एक सरदार की लड़की पर नजर रखता है। नीच! बेईमान! तूने भरे मेले में पुरखों की रस्म को तोड़ा है। आज तेरी बोटी-बोटी नोच ली जाएगी!"

मूसा खां और उसके गांव के बहुत-से लोग फज्जे को मारने के लिए आगे बढे, मगर फज्जा पलटकर वापस दरिया की तरफ भागा। इससे पहले कि वे उसे पकड़ सकते उसने एक ऊंची चट्टान से कूदकर दरिया मे छलांग लगा दी।

दर्शकों ने अपने दिल थाम लिए। एक बार तो वे चढ़े हुए दरिया को चीरकर शाह मजार के चबूतरे से फतहगढ़ के किले की दीवारों तक आ पहुंचा था। मगर किस हालत मे जख्मी और थका हुआ और सांस धौंकनी की तरह चलती हुई! निस्सन्देह दूसरी बार उसी दरिया में तुरन्त कूद जाना मृत्यु को निमंत्रण देना था। कोई इन्सान दूसरी बार इस तूफानी धारा से नही बच सकता था।

मगर फज्जा ऐसा मालूम होता था कि फौलाद का बना हुआ है। उसका सांवला और मज़बूत शरीर पानी की लहरों को वाष्प-नौका की तरह काटता हुआ आगे बढ़ रहा था। डूबकर कई बार वह उभरा और उभरकर एक तीर की तरह सनसनाता हुआ आगे बढ़ता गया और दूसरे किनारे की ओर तैरता

गया। परन्तु अब की वार वह जान-बूझकर शाह नज़ीर के चबूतरे पर नही रुका बल्कि उससे बहुत नीचे, मेले के स्थान से बहुत नीचे किनारे से जा लगा, फिर एक चट्टान पर खड़े होकर उसने अपनी दोनो हथेलियों को फैलाकर अपने मुंह के दोनो ओर रखकर जोर-से चिल्लाकर कहा, "याद रख, तेरी बेटी अब मेरी है!"

अब वह मुर्दा था और उसकी लाश पुलिसवालों की निगरानी मे अस्पताल आ चुकी थी। अस्पताल में सैकडों लोगो की भीड़ थी। मैंने अपने जीवन मे इतने आदमी अस्पताल मे कभी नही देखे थे। अस्पताल के इर्द-गिर्द मेला-सा लग गया था। झुण्ड के झुण्ड उस विद्रोही को देखने के लिए आ रहे थे। जिसके सिर के लिए राजाजी ने दस हज़ार रुपये का इनाम रखा था। अंग्रेज़ी इलाके से भी तारें भेजी जा चुकी थी और सुना था कि दो रोज़ में अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर लाश की शिनाख्त के लिए आनेवाला है। तब तक लाश अस्पताल के मुर्दाखाने में वर्फ में दबाकर रखी जाएगी। यह मुर्दाखाना स्पेशल क्वार्टरों के नीचे की घाटी पर सबसे अलग-थलग स्थित था। और मुझे इस जगह से बहुत डर लगता और उस तरफ कभी न जाता था और न ही मेरी माजी मुझे कभी उस तरफ जाने देती थी और मुर्दाखाने के भूतो और चुड़ैलो के किस्से सुनाकर उन्होने मेरे मन मे और भी डर पैदा कर दिया था और अपने पिताजी के साहस पर मुझे बहुत आश्चर्य होता था। वे किस प्रकार इतमीनान से मुर्दों की चीर-फाड़ कर लेते है। लेकिन वह जमाना मेरे वचपन का था। लेकिन अब बड़े हो जाने पर मुझे मुर्दों पर कोई आश्चर्य नही होता। मुर्दे भाग्यवान थे कि वे मर गए। लेकिन आश्चर्य उन ज़िंदो पर जरूर होता है जो घटनाओ और परिस्थितियों का अत्याचार सहते हैं। स्वयं अपनी आंखो अपनी ज़िंदगी के टुकड़े होते देखते हैं। और विरोध का एक शब्द कहे बिना समाज के मुर्दाखाने में पड़े-पडे सड़ जाते हैं।

लाश को देखने की हिम्मत तो मुझमें नही होती। इसलिए मैं अस्पताल के वरामदे के वाहर ही डरा-सहमा लोगो की वातें सुनता रहा जो अन्दर से लाश को देखकर आ रहे थे और अब अस्पताल के वाहर वाग की क्यारियों मे दो, चार, दस की टोलियां बनाए वातें कर रहे थे। एक वालक की उपस्थिति को

कौन महत्त्व देता है। इसलिए वे वातें करते रहे और मैं इस टोली से उस टोली में जाकर बातें सुनता रहा और जो बाते वे कर रहे थे, उनसे पता चला कि मूसा खां ने वड़ी दीदारी से फज्जे का पीछा किया और जव फज्जा अपनी जान वचाकर भागने लगा तो मूसा खां ने उसे गोली से मार डाला। नहीं तो यह सम्भव था कि मूसा खां फज्जे को जिंदा ही पकडकर राजा साहव की सेवा मे पेश करता। मगर राजा साहव अव मूसा खां के कारनामे पर वहुत प्रसन्न थे। अव योजना यह थी कि जब अंग्रेज साहव बहादुर दोहाला आकर लाश की शिनाख्त कर लेगा और मूसा खां के इनाम के कागज़ पर हस्ताक्षर कर देगा तो फज्जे का सिर काटकर नेज़े पर चढ़ाकर सदर मुकाम मे जगह-जगह दिखाया जाएगा ताकि वदमाशो और विद्रोहियों को उससे शिक्षा मिले।

अस्पताल मे इस समय स्वयं मूसा खां भी अपने तीस-चालीस समर्थकों के साथ उपस्थित था। वह वड़ी-बड़ी आंखोवाला नाटे कद का, तावे के रंग का, दोहरे वदन का अधेड उम्र का आदमी था। मुझे उसकी आंखें बड़ी भयजनक लगती थी। और उसकी हंसी वडी तीखी और कड़वी थी और वह वात करते समय वार-वार अपनी कारतूस की पेटी को हिलाता था जो उसकी कमर से बंधी हुई थी। मुझे मूसा खां से वड़ा डर लगा इसलिए मैं उसे दूर ही से देखकर वापस नीचे भाग गया, जहां मांजी ने मुझे अस्पताल जाने पर ज़ोर से डांट पिलाई और दिन-भर के लिए घर से निकलने के लिए मना कर दिया।

जब शाम गहरी हो गई तो पिताजी अस्पताल से थके-हारे लौटे। मगर आज मांजी ने उन्हे बंगले के वाहर वरामदे मे ही रोक लिया। यह माजी की आदत थी कि जिस दिन अस्पताल मे कोई लाश आती थी तो वे पिताजी को उस समय तक घर में घुसने नही देती थी जव तक वे उनपर गगाजल न छिडक ले। जो पूजा के कमरे में एक वन्द टीन मे ताला लगाकर रखा रहता था। इसलिए मांजी ने आज वरामदे के वाहर ही पिताजी को रोक लिया। उनपर दूर ही से गंगाजल छिड़का, फिर उनसे कहा कि वे अपने कपड़े उतार दें। और एक नई और कोरी धोती उन्होने पिताजी को पहनने को दी और वह इसी धोती मे लिपटे हुए घर में दाखिल हुए। माजी उन्हे सीधे गुसलखाने मे ले गईं। जहा गरम पानी उनके नहाने के लिए पहले से ही तैयार था। नहा-

धोकर नये कपड़े पहनकर जव डाक्टर साहव गुसलखाने से निकले तो मांजी की जान मे जान आई। कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् हम तीनों ने खाना खाया। खाना खाने के पश्चात् पिताजी सीधे सोने के कमरे में चले गए। और देर तक एक वड़ी पुस्तक उठाकर उलट-पलटकर कुछ देखते रहे। दो-तीन घंटो के वाद रात जव गहरी हो चुकी और उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि मैं सो गया हूं तो मांजी से वोले :

"काके दी मां, सो गई कि जागती है ?"

"नही, जागती हूं।" मांजी अपने बिस्तर मे दुवकी और सहमकर वोलीं।

"तू वोलती क्यो नही ?"

"क्या वोलूं, मुझे उस मुए डाकू से डर लगता है जो मुर्दाखाने में पड़ा है।"

"वह डाकू नही था।"

"डाकू नही तो फिर कौन था ?" मांजी ने आश्चर्य से पूछा।

पिताजी आहिस्ता से बोले, "वह तेरी-मेरी तरह का एक मनुष्य था जो अपने लोगो की भलाई के लिए काम करता था।"

"परे हटो !" मांजी तुनककर वोली, "तुम भी जाने कैसी उलटी-सीधी वातें करते रहते हो। सारी दुनिया जानती है कि फज्जा एक ज़ालिम डाकू था जिसके सिर पर राजाजी ने इनाम रखा था, क्योंकि उसने सारे इलाके में ऊवम मचा रखा था। वह तो परमात्मा भला करे ईसा खां का, जिसने उस ज़ालिम को गोली से मार दिया।"

"ईसा खां नही, मूसा खां।" पिताजी टोकते हुए वोले।

"ईसा खां हो कि मूसा खां, एक ही बात है। इन सब मुए मुसलमानों के नाम एक जैसे होते हैं, मुझे नही आते!..." मांजी ने हाथ चलाकर कहा।

"और हिन्दुओ के नाम एक-से नही होते क्या ?" पिताजी मुस्कराकर वोले, "इन्द्र, महेन्द्र, गजेन्द्र, राजेन्द्र; सभी इन्द्र ही इन्द्र हैं ?"

"तुम तो जव वात करने वैठते हो तो मुसलमानो की तरफदारी करने लगते हो। अव फज्जा डाकू डाकू ही नही है, कल को कहोगे कि ईसा खां ने फज्जे को मारा ही नही।"

"ईसा नही मूसा खां !"

"अच्छा वावा मूसा खां ही सही। फिर ?"

"फिर किस्सा यह है कि मूसा खां ने फज्जे को लड़ाई में नही मारा।" डाक्टर साहब वोले।

"वही वात ! मैं न कहती थी कि तुम आ जाओगे किसी उलटी-सीधी थ्योरी पर !" मांजी ज़रा क्रोध से वोलीं।

"लोग कहते हैं, फज्जे को मूसा खां की लड़की खानम से प्रेम था। खानम भी इस जिआले जवान से प्यार करने लगी थी, मगर क्योंकि मूसा खा फज्जे के खिलाफ था; रियासती और अंग्रेज़ी दोनों इलाकों से वारण्ट निकले हुए थे, इसलिए फज्जा खानम से चोरी-छिपे मिलता था। वह दिन-भर पहाड़ों की गुफाओ तथा कछारों में छिपा रहता था। दूर-दराज़ के थानो पर डाके मारता। पुलिस और फौज को परेशान करता। सारे इलाके के नवयुवक गुप्त रूप से उसके समर्थक थे। नौजवान लड़कियों ने उसकी प्रशसा में गीत कहे थे। और वह अपने इलाके का वहुत वडा हीरो था और खानम जी-जान से उसे प्यार करती थी। गहरी अंधेरी रातों मे सून दरिया के किनारे, फतहगढ़ के किले की दीवारों के नीचे खानम और फज्जा मिला करते थे केवल चन्द घंटों के लिए। फिर भोर से पहले फज्जा या तो फतहगढ़ की पथरीली पहाडियों की राह लेता या दरिया पार करके दोहाला के इलाके में चला जाता और उसे आज तक कोई पकड़ न सका।"

"फिर वह कैसे पकड़ा गया।" मांजी ने पूछा।

"खानम की खाला ने, जो अव तक उसकी हमराज़ रही थी, एक रोज मूसा खां को सव कुछ वतला दिया।" 'हाय री जनम जली, मत्था सड़ी, वुड्ढी खाला, तुझको शरम न आई !" माजी को एकदम खानम और फज्जे पर तरस आ गया। "नी खसमा खानिए," मांजी ने जैसे खाला को सम्वोधित करके कहा, "तुझे इन गरीवों का प्यार वरवाद करते हुए लज्जा न आई !" फिर वे पिताजी की ओर मुडकर वोली, "फिर क्या हुआ ?"

"फिर यह हुआ, यह समाचार मिलते ही मूसा खां ने फज्जे को पकड़ने के लिए गांव के चारों ओर अपना जाल फैला दिया। लेकिन उसने किले के सैनिको को विलकुल खवर न दी। ताकि वे भी इनाम के हकदार न वन जाएं। हर रोज रात को उसके लोग पहरा देते थे और क़ेवल इस टोह में रहते थे कि रात को खानम कही वाहर जाए तो वे उसका पीछा करें।"

"फिर ?" मांजी की सांस तेज़ हो गई।

"पहले तीन दिन तो कुछ नही हुआ। खानम बड़े मजे से अपने घर में सोती रही। चौथी रात, जब आधी रात इधर हुई, आधी रात उधर हुई तो खानम उठकर बैठ गई और खाला को भी उसने जगा दिया। फिर खानम ने अपने बाल संवारे, नये कपडे पहने। नीली सूसी की मुगलई सलवार और कमीज़ और सिर पर रेशमी ओढनी डालकर अपने प्रियतम से मिलने चली।"

"हां।" मांजी के मुह से बेअख्तियार निकला।

"खाला साथ मे थी।"

"कुटनी, मुरदार, कीड़े पड़ें उसकी जून में!" मांजी ने क्रोध से कांपती हुई आवाज में कहा।

"किले की दीवारों के नीचे वे दोनों मिले—खानम और फज्जा। आखिर जब रात का तीसरा पहर जाने लगा तो फज्जा मन न चाहते हुए भी खानम से अलग हुआ। गांव की सीमा से बाहर-बाहर उसी रास्ते पर चलने लगा जो फतहगढ़ के दर्रे को जाता है और जहां पर उसने अपना गुप्त अड्डा बना रखा था। इधर नीचे के रास्ते से फज्जा जा रहा था, उधर ऊपर के रास्ते से खानम खाला को लेकर अपने गाव को जा रही थी। दोनो रास्तों पर तारीक परछाइया-सी हिलती थी। फज्जा कभी खानम की परछाईं को देखकर खुश हो लेता, कभी खानम नीचे जाते हुए फज्जे को देखकर दिल ही दिल में वारी-न्यारी होने लगती।"

"फिर ?"

"फिर जब फज्जा दरिया के किनारे एक तंग मोड़ से गुजरकर दर्रे की ओर मुड़ने लगा, किसीने पीछे की चट्टानो के पीछे से उसपर गोलियों की वर्षा कर दी। एकसाथ तड़ा-तड़ की आवाज से छः गोलियां उसकी पीठ में घुस गईं। फज्जा ज़ोर से चिल्लाया, 'खानम!' और ऊपर के रास्ते पर जाते ही खानम गोलियों की आवाज़ सुनकर कांप गई और दौड़ती, गिरती-पड़ती घाटियो से नीचे उतरती उस स्थान पर पहुंच गई, जहां खाक और खून मे लथपथ उसका प्रियतम पड़ा था—बेजान, मुर्दा। और उसकी लाश पर मूसा खा अपने हाथ मे रिवालवर लिए मुस्करा रहा था।"

माजी कुछ देर तक निश्चेष्ट रही। खामोशी से अपनी भीगी आंखें पोछती रही। फिर बोली, "तुम तो ऐसे बात करते हो जैसे तुम उस घटनास्थल पर

इस जगह पर कोई किसीकी नही सुनता है ! क्या यहां सब मुर्दे बसते हैं ?"

खानम ने बड़ी घृणा से पूछा और उसकी गहरी काली आंखों से शोले निकलने लगे। फिर वह मुंह फेरकर बिना कुछ कहे बरामदे के बाहर निकल गई।

दूसरे दिन खानम ने मैजिस्ट्रेट लाल खान की अदालत मे प्रार्थनापत्र दिया कि वह फज्जे की विधवा है, इसलिए फज्जे की लाश उसके हवाले की जाए। प्रार्थनापत्र लेकर जब वह स्वय अदालत में पेश हुई तो लोगो के ठट के ठट लग गए। और अदालत को अपना कमरा दर्शको से खाली करना पड़ा। फिर इलाके के तमाम बड़े-बड़े अफसर और चौधरी और प्रतिष्ठित लोग अदालत मे उपस्थित थे। सरदार मूसा खां भी मौजूद था।

मैजिस्ट्रेट लाल खान ने प्रार्थनापत्र लेकर पूछा, "सहद मुहम्मद तेरा क्या लगता था ?"

"वह मेरे सिर का साईं (सरताज) था।" खानम ने बडी निर्भीकता से उत्तर दिया।

"क्या तेरी और उसकी शादी हुई थी ?" मैजिस्ट्रेट ने फिर पूछा।

"नहीं।"

"क्या तेरी उसकी आशनाई थी ?"

"नही !" खानम गुस्से से कड़ककर बोली, "मैं तो क्वारी हूं। उसने तो आज तक मेरे शरीर को छूआ तक नही, मगर फिर भी वह मेरे सिर का साईं था। उसकी लाश मेरे हवाले कर दी जाए।"

मूसा खां ने आगे बढकर हाथ जोडकर कहा, "सरकार, यह मेरी लडकी है, मेरी आज्ञा के बिना घर से भागकर यहां आई है। इसे मेरे हवाले कर दिया जाए।"

"मैं किसी गद्दार की लड़की नही हूं !" खानम ने गरजकर कहा, "मैं फज्जे की विधवा हूं। उसकी लाश मेरे हवाले कर दी जाए।"

मैजिस्ट्रेट लाल खान ने खानम को समझाते हुए कहा, "तू एक प्रतिष्ठित सरदार और नम्बरदार की लड़की है। तेरे पिता ने रियासत के खतरनाक विद्रोही को, जिसके सिर पर दस हजार का इनाम था, मारकर हम सबकी प्रशंसा

प्राप्त की है। तेरे बाप को अंग्रेज़ी सरकार से पांच हज़ार का इनाम मिलेगा। राजा साहब से दस हज़ार का इनाम, ख़िलअत और जागीर मिलेगी। ऐसे बड़े आदमी की बेटी को कोई ऐसी बातें नही कहनी चाहिए।"

खानम ने आहिस्ता से, मगर गहरे विश्वास के साथ कहा, "आज भरी अदालत में मैं सबसे कहती हूं, मेरा बाप भी मेरे सामने खड़ा है वह भी सुन ले, जिस इनाम के लिए उसने यह काम किया है, वह इनाम उसे कभी नही मिलेगा। क्योंकि गद्दार को इनाम नही दिया जाता। उसे तो सज़ा दी जाती है! बस। अदालत मेरी दरखास्त का फैसला करे।"

"नामंजूर!" मैजिस्ट्रेट लाल खान ने ऊंची आवाज़ मे कहा।

अदालत से निकलकर खानम इस तरह भागी कि उसका कही पता न चल सका। मूसा खां ने अपनी लड़की की खोज में चारो ओर आदमी दौड़ाए। पुलिस ने भी बडी दौडधूप की, मगर खानम टक्की के नीचे पहुचकर ऐसी गायब हुई कि फिर उसका पता न चल सका। खानम के धमकी देने और धमकी देकर गायब हो जाने पर लोग प्रकार-प्रकार की बातें करने लगे। कोई कहता, "मूसा खां का जीवन खतरे में है। उसकी लड़की उसे कत्ल कर देगी।" यद्यपि मूसा खा हर समय रिवालवर अपनी कमर मे रखता था फिर भी उसकी रक्षा के लिए पुलिस के सिपाही उसके साथ लगा दिए गए। राजा साहब ने मूसा खां को बुलाकर उसकी पीठ ठोकी और उसे वचन दिया कि यूंही अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर दोहाला से आकर अपनी शिनाख्त की कार्यवाही पूरी करके मूसा खां के इनाम के लिए आदेश जारी करेगा, राजा साहब भी उसके दूसरे दिन ही एक दरबार बुलाकर मूसा खा को अपने हाथ से दस हजार की थैली देंगे। खिलअत और जागीर भी प्रदान करेंगे। मूसा खां भी यह इंटरव्यू लेकर बेहद खुश-खुश अपने निवासस्थान पर वापस आया।

दो दिन के बाद जब अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर रियासत के सदर मुकाम पर पहुंचा और लाश देखने के लिए अस्पताल पहुचा तो एक आश्चर्यजनक दुर्घटना हुई। घटनास्थल पर पहुंचकर सबने देखा कि मुर्देखाने का ताला टूटा पडा है और फज्जे का सिर गायब है। केवल एक बेधड़ लाश ऐसी भय-सकुल अवस्थ मे पड़ी है कि किसी प्रकार भी पहचानी नही जा सकती।

मौजूद थे।"

"मैं तो नहीं था। मगर जो था उसने मुझे स्वयं ही घटना सुनाई है।"

"किसने ?"

"खानम ने !"

"खानम यहां आई है ?" मांजी ने आश्चर्य से पूछा, "यहां ? सदर मुकाम पर ?"

"हां, वह इस वक्त बाहर बरामदे में बैठी है।" पिताजी ने बहुत ही धीमे स्वर मे कहा।

मांजी एकदम चौंक गईं। देर तक चुप रहीं। फिर आहिस्ता बोली, "वह यहां कैसे आई है तुम्हारे बंगले पर ? वह क्या चाहती है ?"

"वह चाहती है एक दफा फज्जे को देख ले।"

मांजी फिर देर तक चुप रही। फिर बोली, "उसके बाप को मालूम है कि वह यहां आई है ?"

"नहीं, वह सबसे छिपकर यहां आई है और चाहती है कि मैं उसे एक दफा फज्जे की लाश दिखा दूं।"

"मगर फज्जे की लाश तो मुर्दाखाने मे है।"

"हां, मगर मुर्दाखाने की कुंजी तो मेरे पास है।"

मांजी भय से कांपकर बोलीं, "इस वक्त आधी रात में तुम मुर्दाखाने के अन्दर जाओगे ?"

"क्या हर्ज है ?"

"और अगर किसीको पता चल गया ? अगर किसीने रिपोर्ट कर दी ? अगर कोई शिकायत राजाजी तक पहुंच गई ?"

"इस अंधेरे में कौन देखता है ?"

"नहीं, नहीं। मैं तुम्हे नही जाने दूगी !"

मांजी एकदम निर्णयात्मक स्वर मे बोलीं, "तुम तो बावले हो और अकल नाम की कोई चीज़ तुम्हारे दिमाग में नही है। मैं खुद अभी बाहर जाती हूं और खानम से बात करती हूं।" मांजी बिस्तर से उठकर बोली।

"ऐसा मत करो, ऐसा मत करो।"

पिताजी घबराकर बोले, "उसका दिल मत तोड़ो, ज़रा-सी तो बात है।"

"वाह ! चाहे हमारी नौकरी चली जाए—यह भी क्या तमाशा है। मरनेवाला तो मर गया, साथ में हमारी जीविका भी ले जाएगा ?"

मांजी एकदम कमरे के बाहर निकल गईं और पिताजी उनके पीछे भागे। और उन दोनो के पीछे दवे पांव मैं भी बाहर निकला। मगर वरामदे मे नहीं गया। दरवाज़े की आड़ लेकर देखने लगा। बरामदे में एक लकड़ी के थम्ब से टेक लगाए दो थम्बों के दरम्यान लटकी हुई लालटेन की रोशनी उसके परेशान और उदास चेहरे पर पड़ी हुई थी। मांजी को देखकर जब वह लडकी उठी तो मुझे वह माजी से भी लम्बी मालूम हुई। उसके काले-काले बाल खुले हुए थे और घुटनो तक आते थे। मैंने अपने जीवन मे इतने लम्बे बाल किसी औरत के नही देखे थे। उसका चेहरा सफेद था और आंखें गहरी और काली थीं। और वह बिलकुल चुप थी और मांजी को देखकर भी वह बिलकुल चुप खडी रही। इतनी चुप जैसे वह लड़की न हो। बल्कि जैसे वह याचना-स्वरूप मूर्ति हो या सम्पूर्ण प्रार्थना हो।

"चली जाओ !" मांजी ने गरजकर कहा।

"नही, नही, काके दी मां !" पिताजी ने परेशान होकर कहा। मगर मांजी फौरन तड़पकर बोलीं, "तुम चुप रहो।" फिर खानम की तरफ मुडकर एक अंगुली उठाकर बोलीं, "सीधे-सीधे यहां से चली जाओ वरना अभी पुलिस को बुलाती हू !"

"बस, एक वार मुझे उसे देख लेने दो।" खानम आहिस्ता से बोली।

"अब उसे देखकर क्या करोगी ?" मांजी ने पूछा।

"मैं उससे कुछ वातें करना चाहती हूं।" खानम ने वड़ी सादगी से कहा।

"पगली हुई हो। मुर्दे से कौन वातें कर सकता है ?"

"मैं कर लूंगी।" खानम ने पूरे विश्वास से कहा, "मुझे उसे एक बार दिखा दो, केवल एक वार !"

मांजी रोते हुए भर्राई हुई आवाज़ मे बोली, "जा अभागिन चली जा ! मुर्दे किसीकी वात सुन सकते तो आज कोई स्त्री विधवा न होती, किसीका वच्चा यतीम न होता। लेकिन मुर्दे सुन नही सकते।" खानम देर तक मेरी मां को देखती रही। कभी उसकी निगाह मेरी मां पर जाती, कभी डाक्टर साहव के चेहरे पर। और फिर वह वहुत ही निराश स्वर से वोली, "ठीक है। मुर्दे नहीं सुन सकते, शायद इसलिए तुम भी नही सुनती हो। डाक्टर भी नही सुनता है।

इस जगह पर कोई किसीकी नही सुनता है ! क्या यहां सब मुर्दे बसते हैं ?"

खानम ने बड़ी घृणा से पूछा और उसकी गहरी काली आंखों से शोले निकलने लगे। फिर वह मुंह फेरकर बिना कुछ कहे बरामदे के बाहर निकल गई।

दूसरे दिन खानम ने मैजिस्ट्रेट लाल खान की अदालत मे प्रार्थनापत्र दिया कि वह फज्जे की विधवा है, इसलिए फज्जे की लाश उसके हवाले की जाए। प्रार्थनापत्र लेकर जब वह स्वयं अदालत मे पेश हुई तो लोगों के ठट के ठट लग गए। और अदालत को अपना कमरा दर्शको से खाली करना पड़ा। फिर इलाके के तमाम बड़े-बड़े अफसर और चौधरी और प्रतिष्ठित लोग अदालत मे उपस्थित थे। सरदार मूसा खां भी मौजूद था।

मैजिस्ट्रेट लाल खान ने प्रार्थनापत्र लेकर पूछा, "सहद मुहम्मद तेरा क्या लगता था ?"

"वह मेरे सिर का साईं (सरताज) था।" खानम ने बड़ी निर्भीकता से उत्तर दिया।

"क्या तेरी और उसकी शादी हुई थी ?" मैजिस्ट्रेट ने फिर पूछा।

"नही।"

"क्या तेरी उसकी आशनाई थी ?"

"नही !" खानम गुस्से से कड़ककर बोली, "मैं तो क्वारी हूं। उसने तो आज तक मेरे शरीर को छूआ तक नही, मगर फिर भी वह मेरे सिर का साईं था। उसकी लाश मेरे हवाले कर दी जाए।"

मूसा खां ने आगे बढ़कर हाथ जोड़कर कहा, "सरकार, यह मेरी लड़की है, मेरी आज्ञा के बिना घर से भागकर यहा आई है। इसे मेरे हवाले कर दिया जाए।"

"मैं किसी गद्दार की लडकी नही हूं !" खानम ने गरजकर कहा, "मैं फज्जे की विधवा हू। उसकी लाश मेरे हवाले कर दी जाए।"

मैजिस्ट्रेट लाल खान ने खानम को समझाते हुए कहा, "तू एक प्रतिष्ठित सरदार और नम्बरदार की लड़की है। तेरे पिता ने रियासत के खतरनाक विद्रोही को, जिसके सिर पर दस हजार का इनाम था, मारकर हम सबकी प्रशंसा

प्राप्त की है। तेरे बाप को अंग्रेज़ी सरकार से पांच हज़ार का इनाम मिलेगा। राजा साहब से दस हज़ार का इनाम, खिलअत और जागीर मिलेगी। ऐसे बड़े आदमी की बेटी को कोई ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए।"

खानम ने आहिस्ता से, मगर गहरे विश्वास के साथ कहा, "आज भरी अदालत में मैं सबसे कहती हूं, मेरा बाप भी मेरे सामने खड़ा है वह भी सुन ले, जिस इनाम के लिए उसने यह काम किया है, वह इनाम उसे कभी नहीं मिलेगा। क्योंकि गद्दार को इनाम नहीं दिया जाता। उसे तो सज़ा दी जाती है! बस। अदालत मेरी दरखास्त का फैसला करे।"

"नामंजूर!" मैजिस्ट्रेट लाल खान ने ऊंची आवाज़ में कहा।

अदालत से निकलकर खानम इस तरह भागी कि उसका कहीं पता न चल सका। मूसा खां ने अपनी लड़की की खोज मे चारों ओर आदमी दौड़ाए। पुलिस ने भी बडी दौडधूप की, मगर खानम टक्की के नीचे पहुचकर ऐसी गायब हुई कि फिर उसका पता न चल सका। खानम के धमकी देने और धमकी देकर गायब हो जाने पर लोग प्रकार-प्रकार की बातें करने लगे। कोई कहता, "मूसा खां का जीवन खतरे मे है। उसकी लड़की उसे कत्ल कर देगी।" यद्यपि मूसा खां हर समय रिवालवर अपनी कमर में रखता था फिर भी उसकी रक्षा के लिए पुलिस के सिपाही उसके साथ लगा दिए गए। राजा साहब ने मूसा खां को बुलाकर उसकी पीठ ठोकी और उसे वचन दिया कि यूंही अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर दोहाला से आकर अपनी शिनाख्त की कार्यवाही पूरी करके मूसा खां के इनाम के लिए आदेश जारी करेगा, राजा साहब भी उसके दूसरे दिन ही एक दरबार बुलाकर मूसा खां को अपने हाथ से दस हज़ार की थैली देंगे। खिलअत और जागीर भी प्रदान करेंगे। मूसा खां भी यह इंटरव्यू लेकर बेहद खुश-खुश अपने निवासस्थान पर वापस आया।

दो दिन के बाद जब अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर रियासत के सदर मुकाम पर पहुंचा और लाश देखने के लिए अस्पताल पहुंचा तो एक आश्चर्यजनक दुर्घटना हुई। घटनास्थल पर पहुंचकर सबने देखा कि मुर्देखाने का ताला टूटा पड़ा है और फज्जे का सिर गायब है। केवल एक बेधड़ लाश ऐसी भय-संकुल अवस्थ मे पड़ी है कि किसी प्रकार भी पहचानी नहीं जा सकती।

इस बेधड़ लाश को देखकर अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर ने शनाख्ती कागज़ों पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया, और देशी राजा की क्या मजाल थी कि मूसा खां को इनाम देता। नतीजे में मूसा खां को निराश होकर अपने इलाके को लौट जाना पड़ा। जहां चन्द दिनों के बाद उसकी लाश किले की दीवारों के नीचे पाई गई।

जिस दिन ताला टूटा और फज्जे का सिर गायब हुआ, उस दिन शाम के समय जब पिताजी घर लौटे तो बेहद खुश, मुस्कराते हुए और गुनगुनाते हुए। 'फटी जब कान इस बन मे' वाला गीत उनके होठों पर मौजूद था।

"ताला किसने तोड़ा ?"

"फटी जब कान बन में !" पिताजी उत्तर में गुनगुनाते रहे।

"मैं कहती हूं कि एक दिन तुम जेल में जाओगे।"

"फटी जब कान......"

"...मैं बाजार में बैठी भीख मांगूंगी और तुम्हारा बच्चा...!"

"....इस बन में।...इस बन में...इस बन मे...!" पिताजी ज़ोर-जोर से गाने लगे।

फिर कुछ देर के बाद खाने के कमरे मे मेरी मां से कहने लगे :

"काके दी मां ! जानती हो इस दुनिया में सबसे कीमती चीज़ कौन-सी है ?"

"सोना।" मेरी मां ने कहा।

"नही, आज़ादी !...काके दी मां, इस दुनिया मे सबसे महंगी और कीमती चीज़ आजादी है, और इतिहास बताता है कि इन्सान ने हर मोड़ पर इसकी पूरी कीमत अदा की है।"

खोया हुआ स्वर्ग

मांजी गुर्दे के दर्द की बीमार थी। वर्ष में दो-तीन बार उन्हे गुर्दे के दर्द की शिकायत पैदा होती थी। कभी तो यह दर्द कम गहरा होता था, परन्तु कभी-कभी यह दर्द ऐसी तेज़ी पकड जाता कि मांजी के लिए पाच-छः दिन के लिए बिस्तर से उठना मुहाल हो जाता। उनकी चीखें सुनकर मैं भी बिलबिला उठता और पांयती से लगकर रोने लगता। पिताजी की दवा-दारू से दो-तीन दिन में दर्द का तीखापन बहुत कम हो जाता। किन्तु इसपर भी वे तीन-चार दिन बिस्तर से न उठ सकती। ये दिन मेरी बचपन की आज़ादी के सबसे अच्छे दिन होते थे। कहना तो नही चाहिए, पर वास्तविकता यही थी कि उनके दर्द मे कमी होते ही मेरे चेहरे पर रौनक-सी आ जाती। न केवल इस विचार से कि माजी अब ठीक हो रही है, बल्कि इस विचार से कि अब मांजी तीन-चार दिन और आराम करेगी और मैं आज़ादी से खेल सकूगा। और बाग से बाहर भी जहां जी चाहेगा घूम सकूगा और कोई मुझे रोकनेवाला न होगा। बडे तो कभी इस बात की ठीक से कल्पना भी नही कर सकते कि बच्चों की आज़ादी की दुनिया कितनी सीमित होती है, और वे उसकी हदबन्दी से कितना झल्लाते है! एक घर, एक बरामदा, एक बाग, कुछ ढलवानें, और···बस। या एक गली, एक मैदान—छोटा-सा, या केवल घर की चारदीवारी या कभी-कभी किसी बाज़ार का नुक्कड़।···कई वर्ष बचपन के इस सीमित, तंग और घुटी हुई दुनिया की भेंट हो जाते है।

पिछले डेढ़ मास से मुझपर कड़ा पहरा था। जब से मैंने तारां के साथ जाकर दरमान्नियोंवाले जगल की ढलान से जंगली आखरे तोड़कर खाए थे और फलस्वरूप मुझे पेट के दर्द और असहाल की तीव्र शिकायत हो गई थी।

"नहीं मारेंगी। वे तो विस्तर पर बीमार पड़ी हैं।"

एक क्षण के लिए तारां का चेहरा चमक उठा। फिर बुझ गया। बड़ी निराशा से बोली, "फिर भी नहीं खेल सकती।"

"क्यों नही ?"

"मां कह गई है कि विश्नू ब्राह्मण के घर घास का एक गट्ठा पहुंचाना है। वह खुद तो दत्ते के खेतो में काम करने गई है, और मुझे घास काटने के लिए कह गई है।"

"कब तक घास काटोगी ?"

"जब तक गट्ठा न बन जाए।"

"गट्ठा कब तक बनेगा ?"

"शाम तक।"

मैंने क्रोध से पैर पटक दिया, "तो इसका तो यह मतलब हुआ कि हम शाम तक खेलेंगे ही नही। और शाम से पहले अगर मैं घर न पहुंचा तो डोडियां पड़ेगी। इसका मतलब यह हुआ कि हम आज खेलेंगे ही नही।"

"जी हां, मेरा ऐसा ही खयाल है।" तारा बड़ी अदा से पुतलियां नचाते हुए बोली।

मैंने दरांती उसके हाथ से छीनकर परे फेंक दी और बोला, "उठो खेलो।"

"नही," वह बड़ी विवशता से बोली, "मेरी मां मारेगी।"

"अजीब मुसीबत है," मैंने कहा, "कभी मेरी मां मारती है, कभी तुम्हारी मां। इन लोगो को मारने के सिवा और कुछ आता ही नही है !"

तारां चुप रही और दरांती उठाकर, सिर झुकाकर फिर घास काटने लगी।

"एक तरकीब बताऊं !" अचानक मैंने प्रसन्न होकर कहा।

"तुम्हारी सब तरकीबें पिटाईवाली होती हैं," तारां ने बड़ी निराशा से कहा, "मुझे मत बताओ।"

"सुनो तो," मैंने अपनी तरकीब पर और भी खुश होते हुए कहा, "हम लोग अभी जाते है और विश्नू ब्राह्मण की गाय खोलकर ले आते हैं और उसे इस ढलान पर चरने के लिए छोड़ देते हैं। आ[illegible] गो घास चाहिए ना। वह

यहां मौजूद है। घास काटकर गाय के पास ले जाने की बजाय हम गाय खोलकर घास के पास ले आते है, और बस, और क्या चाहिए।"

"हां, बिलकुल ठीक है।" तारां ने ज़रा मस्तिष्क पर जोर देने के पश्चात्, प्रसन्न होकर मेरे गले में अपनी बांहें डाल दीं और मेरे साथ प्रसन्नता से नाचने लगी। फिर उसने दराती उठाकर अपने घर के पिछवाडे की बाड़ मे कद्दू की वेलो मे छुपा दी और मेरे साथ विश्नू ब्राह्मण की वाड़ी की तरफ दौड़ने लगी जहां गाय वंधी थी।

परन्तु उसके अन्दर जाकर हमें यह देखकर वड़ी निराशा हुई कि गाय वहां पर न थी। हमने उसे बाहर ढूंडा, वह कही नही मिली। उसे तलाश करते हुए हम लोग नीचे फूलवाले चश्मे पर पहुंच गए। यह इसलिए फूलवाला चश्मा कहलाता है कि यहा इस चश्मे के किनारे और ऊपर टीले पर सर्दी के सिवाय हर ऋतु में फूल होते हैं, और जिस टीले के नीचे से यह चश्मा निकलता था, उसपर ऊदे अगूर की वेलों के झाड़ थे जो कोय के एक झुंड पर चढ़े हुए थे। कोय के झुड के बीच शहद की मक्खियो का एक छत्ता था और अंगूर की वेलो के बड़े-वडे हरे पत्तो के झूमरों के अन्दर से शहद की मक्खियों के भिनभिनाने की गूंज ऐसे सुनाई देती थी, जैसे उस वेलों के अन्दर ही कोई दूसरा फूलवाला चश्मा गुनगुना रहा हो।

यहा विचित्र सन्नाटा और मौन था। छोटे-छोटे नीले पत्थरों के इधर-उधर हरे परोवाली तितलियां पानी की सतह पर तैरती फिरती थीं। कई मेढक किनारे पर धूप सेंक रहे थे और हमे देखकर फुदककर पानी मे चले गए। चश्मे मे अंगूर के कई हरे पत्ते तैर रहे थे और उनपर पानी के कतरे यू चमक रहे थे जैसे किसीकी खुली हथेली पर जवाहरात चमक रहे हो।

तारां ने चश्मे के किनारे के फूलो मे से कुछ फूल चुन लिए और उन्हे तोड़कर, उनका गुच्छा बनाकर, अपने बालों मे उड़स लिया।

फिर तारां ने मुझे वताया :

"ये तितलीतार फूल है।"

"नही, ये पनेरी हैं। मेरे पिताजी ने मुझे वताया था।"

"नही, ये तितलीतार हैं।"

ये गहरे ऊदे रंग के मखमली पत्तियोंवाले फूल थे, जिनके केन्द्र में एक पीला

उस दिन से मांजी ने तारां को वड़ी कठोरता से मुझसे खेलने से मना कर दिया था। मैं और तारां उनके हाथो पिटे तो थे ही और कई वार पिटे थे। किन्तु इतनी कठोर सतर्कता कभी नही वरती गई। घर का एक नौकर हर समय मेरे इधर-उधर मंडराता रहता था। और ज्योंही तारां उसे कही दूर से भी दीख पड़ती, वह उसी समय धमकाने के लिए मुक्का तान लेता और वेचारी तारा पिटने के भय से उलटे पाव भाग जाती।

एक वार मैंने एक नौकर को पांच नाशपातिया और एक इकन्नी भी रिश्वत में देनी चाही थी, पर कम्वख्त ने साफ मना कर दिया था। दूसरे नौकर ने मुझसे हसकर दुअन्नी की रिश्वत भी ले ली थी और फिर भी तारां को झिड़ककर भगा दिया था।

इसलिए अब की जव गुर्दे के दर्द से मांजी बीमार पड़ीं तो मैंने हृदय ही हृदय में प्रार्थना की कि मांजी ठीक तो हो जाएं, पर दो-तीन दिन की अपेक्षा पाच-छः दिन के लिए विस्तर पर आराम करती रहे। ऐसा मेरे शैतान मन के वच्चे ने चाहा था। अब वड़ा होकर सोचता हूं कि वे लोग, जिन्होंने इन्सान से नदियों पर पुल वनवाए, समंदरो पर जहाज़ तैराए, नये-नये महाद्वीपो के पते लगवाए, लाखो मील चांद-सितारो तक पहुच जाने की इच्छा जाग्रत् की; वह इच्छा, वह आग, वह तडप, वह भावना, वह जोश—सवसे पहले एक वच्चे ही के दिल मे शोले की तरह कांपता है; और यदि उसे ऊंचा उठने के लिए सुअवसर न मिले तो वचपन की लगातार मारपीट से वही बुझ जाता है। और आपने ऐसे लाखो आदमी देखे होगे जो अपने जीवन मे एक बुझे हुए चिराग की तरह होते है और जीवन की कठिन राह पर एक अंधे की तरह ठोकरें खाते हुए चलते हैं। ऐसे आदमियो की भाग्यहीनता में परिस्थितियों के अतिरिक्त उनके मां-वाप का भी वडा हाथ होता है। मैं इसलिए अपने वाप के समान शरारती वच्चो की बड़ी कद्र करता हूं, क्योंकि मुझे उनके अन्दर वही शोला नज़र आता है।

पहले दो दिन तो मांजी के गुर्दे का दर्द मामूली-सा रहा और वे मामूली तरीके से कराहती रही और स्वभावानुसार मेरी निगरानी और चौकसी पूर्ववत् रही।

किन्तु तीसरे दिन उनका दर्द ऐसी तेज़ी पकड़ गया कि मुझे भी रोने पर

बाध्य होना पड़ा। पिताजी उस समय अस्पताल गए हुए थे। एक नौकर भागा-भागा उनके पास गया। वे दौड़े-दौड़े वापस आए। उन्होंने माजी को एक इन्जेक्शन दिया। जिससे न केवल यह हुआ कि उनका दर्द कम हो गया, बल्कि वे कुछ मिनट के पश्चात् बड़े आराम से सो गईं और पिताजी ने मुझे और अन्य लोगों को बता दिया कि अब ये कुछ घण्टे बड़े आराम से सोएगी। अतः कोई उन्हे परेशान न करे और तब तक उन्हे सोने दिया जाए और जगाने की कोई कोशिश न की जाए।" पिताजी ने इतना कहकर मेरी तरफ शरारती दृष्टि से देखकर मुझें आख मारी। और मुझे जैसेकि उनकी इसी आज्ञा की प्रतीक्षा थी, कुछ मिनट पश्चात् मैं भी चुपके से घर से सटक गया और तारा की तलाश मे रवाना हो गया।

तारां मुझे अपने घर के नीचे की ढलवान पर लम्बी-लम्बी घास काटती हुई मिल गई। उसकी पीठ मेरी ओर थी और मैं आहट उत्पन्न किए बिना उसके समीप पहुंच गया था। कुछ मिनट तो मैं उसकी दरांती चलाने की कुशलता पर हैरान होता रहा। आखिर इतनी छोटी लड़कियां इतनी जल्दी काम करना कैसे सीख जाती है, जबकि हम एक दरांती तो क्या एक चमचा भी ठीक तरह से अपने हाथ मे नही पकड़ सकते। फिर मेरे हृदय मे उसके साथ खेलने की उमंग उभर आई और मैंने झट आगे बढ़कर उसकी आंखो पर अपने दोनो हाथ रख दिए।

"कौन है ?" वह बोली।

मैं चुप रहा।

"हूं···समझ गई," वह फिर बोली, "रामू भंगी का बेटा दोसा है।"

मैंने जल्दी से अपने हाथ परे हटा लिए और क्रोध से बोला, "खुद जो चमारिन ठहरी तो दूसरो को भगी ही बताओगी।"

तारां ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी। वह तो पहले ही मेरे हाथो का स्पर्श पहचान गई थी, पर मुझे चिढाना जो चाहती थी इसलिए·········।

"चलो खेलें।"

"नही।"

"क्यो नही ?" मैने पूछा।

"तुम्हारी मां मारेंगी।"

"नहीं मारेंगी। वे तो बिस्तर पर बीमार पड़ी हैं।"

एक क्षण के लिए तारां का चेहरा चमक उठा। फिर बुझ गया। बड़ी निराशा से बोली, "फिर भी नहीं खेल सकती।"

"क्यों नही ?"

"मां कह गई है कि बिश्नू ब्राह्मण के घर घास का एक गट्ठा पहुंचाना है। वह खुद तो दत्ते के खेतों में काम करने गई है, और मुझे घास काटने के लिए कह गई है।"

"कब तक घास काटोगी ?"

"जब तक गट्ठा न बन जाए।"

"गट्ठा कब तक बनेगा ?"

"शाम तक।"

मैंने क्रोध से पैर पटक दिया, "तो इसका तो यह मतलब हुआ कि हम शाम तक खेलेंगे ही नही। और शाम से पहले अगर मैं घर न पहुंचा तो डोडियां पड़ेंगी। इसका मतलब यह हुआ कि हम आज खेलेगे ही नही।"

"जी हां, मेरा ऐसा ही खयाल है।" तारा बड़ी अदा से पुतलियां नचाते हुए बोली।

मैंने दराती उसके हाथ से छीनकर परे फेंक दी और बोला, "उठो खेलो।"

"नही," वह बडी विवशता से बोली, "मेरी मां मारेगी।"

"अजीब मुसीबत है," मैंने कहा, "कभी मेरी मां मारती है, कभी तुम्हारी मां। इन लोगो को मारने के सिवा और कुछ आता ही नही है !"

तारां चुप रही और दराती उठाकर, सिर झुकाकर फिर घास काटने लगी।

"एक तरकीब बताऊं !" अचानक मैंने प्रसन्न होकर कहा।

"तुम्हारी सब तरकीबे पिटाईवाली होती हैं," तारां ने बड़ी निराशा से कहा, "मुझे मत बताओ।"

"सुनो तो," मैंने अपनी तरकीब पर और भी खुश होते हुए कहा, "हम लोग अभी जाते है और बिश्नू ब्राह्मण की गाय खोलकर ले आते हैं और उसे इस ढलान पर चरने के लिए छोड़ देते हैं। आखिर गाय को घास चाहिए ना। वह

यहां मौजूद है। घास काटकर गाय के पास ले जाने की बजाय हम गाय खोलकर घास के पास ले आते हैं, और बस, और क्या चाहिए।"

"हां, बिलकुल ठीक है।" तारां ने ज़रा मस्तिष्क पर ज़ोर देने के पश्चात्, प्रसन्न होकर मेरे गले में अपनी बांहे डाल दीं और मेरे साथ प्रसन्नता से नाचने लगी। फिर उसने दरांती उठाकर अपने घर के पिछवाड़े की बाड़ में कद्दू की वेलो में छुपा दी और मेरे साथ विश्नू ब्राह्मण की बाड़ी की तरफ दौड़ने लगी जहां गाय बंधी थी।

परन्तु उसके अन्दर जाकर हमें यह देखकर वड़ी निराशा हुई कि गाय वहां पर न थी। हमने उसे बाहर ढूंढ़ा, वह कही नही मिली। उसे तलाश करते हुए हम लोग नीचे फूलवाले चश्मे पर पहुच गए। यह इसलिए फूलवाला चश्मा कहलाता है कि यहां इस चश्मे के किनारे और ऊपर टीले पर सर्दी के सिवाय हर ऋतु में फूल होते हैं, और जिस टीले के नीचे से यह चश्मा निकलता था, उसपर ऊदे अंगूर की वेलों के झाड़ थे जो कोय के एक झुंड पर चढ़े हुए थे। कोय के झुड के बीच शहद की मक्खियों का एक छत्ता था और अंगूर की वेलो के वड़े-वड़े हरे पत्तों के झूमरों के अन्दर से शहद की मक्खियों के भिनभिनाने की गूंज ऐसे सुनाई देती थी, जैसे उस वेलों के अन्दर ही कोई दूसरा फूलवाला चश्मा गुनगुना रहा हो।

यहा विचित्र सन्नाटा और मौन था। छोटे-छोटे नीले पत्थरो के इधर-उधर हरे परोवाली तितलियां पानी की सतह पर तैरती फिरती थी। कई मेढक किनारे पर धूप सेंक रहे थे और हमें देखकर फुदककर पानी में चले गए। चश्मे मे अगूर के कई हरे पत्ते तैर रहे थे और उनपर पानी के कतरे यूं चमक रहे थे जैसे किसीकी खुली हथेली पर जवाहरात चमक रहे हो।

तारां ने चश्मे के किनारे के फूलो मे से कुछ फूल चुन लिए और उन्हें तोड़-कर, उनका गुच्छा बनाकर, अपने वालों मे उड़स लिया।

फिर तारा ने मुझे बताया :

"ये तितलीतार फूल है।"

"नही, ये पनेरी हैं। मेरे पिताजी ने मुझे वताया था।"

"नही, ये तितलीतार हैं।"

ये गहरे ऊदे रंग के मखमली पत्तियोंवाले फूल थे, जिनके केन्द्र में एक पीला

धब्बा था और दूर से देखने से निस्सन्देह यह लगता था कि जैसे हरे पत्ते पर ऊदी-ऊदी रंग-बिरंगी तितलियां बैठी हैं।

मैंने कहा, "इन फूलों की एक कहानी है।"

"क्या कहानी है ?"

"नही सुनाते !" मैंने इठलाकर कहा।

"नही सुनाओगे !" तारां ने मेरी पीठ पर एक मुक्का मारकर कहा।

"नही !"

"अब भी नहीं ?" तारां ने मेरी पीठ पर दूसरा मुक्का जड़ दिया अपने शरीर की पूरी शक्ति से।

"हरगिज नहीं !" मैंने मुक्का खाते हुए भी हंसकर कहा।

तारां रुआंसी होकर बोली, "फिर कैसे सुनाओगे ?"

"हमारी एक शर्त है।"

"क्या ?"

"तुम वनफशे के फूलों का एक हार बनाकर हमारे गले मे डाल दो। हम तुम्हे पनेरी के फूलो की कहानी सुनाएंगे।"

"अच्छा।" कहकर तारां बड़ी बेमन से उठी, क्योंकि बनफशे के छोटे-छोटे फूलो का हार बनाने मे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है और बहुत समय लगता है।

तारां ने टीले पर उगी हुई घास के खाकी रंग के तुरियोंवाले ऊंचे-ऊंचे खोशे तोड लिए—बारीक, सीधे, लम्बे धागे की तरह साफ-सुथरे खोशे, और फिर वनफशे के फूल तोड़कर उन्हे इन खोशों मे पिरोने लगी। जब दोनो खोशे पिरो दिए जाएगे तो तारा उन्हे डंठल पर गांठ लगाकर जोड़ देगी। बस, हार तैयार हो जाएगा।

"अच्छा, अब कहानी सुनाओ।" तारां वनफशे के फूल पिरोते हुए बोली।

मैंने कहा, "एक लड़का था।"

तारां बोली, "तेरे जैसा।"

"हां, मेरे जैसा।"

"फिर।"

"और एक लड़की थी।"

"मेरे जैसी।"

"नहीं, तुझसे अच्छी।" मैंने उत्तर दिया।

"हुश्श!" तारां ने क्रोध से फूल फेंक दिए।

"अच्छा-अच्छा, बिलकुल तेरे जैसी लड़की थी वह। किन्तु वे दोनों भाई-बहिन थे। और उन्हें तितलियां पकडने का बहुत शौक था।

"वे फूलों पर उड़नेवाली, चौडे-चौड़े परोवाली तितलियां पकड़ते और पानी पर तैरनेवाली छोटे-छोटे स्वच्छ परोंवाली तितलियां पकड़ते और उनके कोमल शरीरों में एक तेज पिन चुभाकर उन्हें मार देते। और उन्हे ब्लाटिंग-पेपर पर सुखा करके अपने एल्बम में सजा लेते।"

"ब्लाटिंग-पेपर क्या होता है?" तारां ने पूछा।

"एक तरह का कागज़ होता है, मोटा और खुरदुरा। वह स्याही को चूस लेता है और पानी को जज्ब कर लेता है। मेरे घर मे वहुत-से ब्लाटिंग-पेपर हैं, तुम्हें दिखाऊंगा।"

"एक मुझे देना।"

"अच्छा दे दूगा।"

"अच्छा, तो आगे चलो। फिर क्या हुआ?"

"फिर यह हुआ कि उन दोनो भाई-वहिनो के मां-बाप उन्हे तितलिया मारने से वहुत मना करते थे। पर वे दोनों हमारी तरह शैतान वच्चे थे। कहना नहीं मानते थे।"

"मैं तो शैतान नहीं हूं, तू होगा!"

"तू होगी!"

"हाथ तोड़ डालूगी अगर तूने मुझे फिर शैतान कहा!" तारां ने धमकी दी और मैं डर गया। जल्दी-जल्दी से आगे कहानी सुनाने लगा।

"एक दिन क्या हुआ कि उन वच्चो के वाग मे दो सुन्दर तितलियां आईं। एक का रग वसन्ती लाल और ऊदा था। दूसरी नीली, हरी और गुलावी परोंवाली थी। ऐसी सुन्दर तितलियां उनके वाग में इससे पहले कभी न आई थीं। दोनो भाई-वहिन उन्हे पकड़ने के लिए दौडने लगे। तितलियां फूलों से उड़ती-उडती वाग से वाहर निकल गईं। दोनो भाई-वहिनों ने उनका पीछा किया। बाग से ढलान-ढलान, ढलान से नदी-नदी पार करके एक पहाड़ आता था। दोनों

भाई-वहिन तितलियों का पीछा करते हुए पहाड़ पर चढ़ गए। पहाड़ पर एक जंगल था।"

"बहुत घना।"

"बेहद घना।"

"और डरावना।"

"और डरावना।"

"वहां एक शेर रहता था।" तारां ने कहा।

"कहानी तू सुनाती है कि मैं?"

"अच्छा-अच्छा, आगे सुनाओ।"

"उस जंगल मे जाकर एक तितली एक ओर को भाग गई और दूसरी तितली दूसरी ओर। दोनों भाई-वहिन अलग हो गए। भाई ने वसन्ती, लाल, ऊदी, तितली का पीछा किया। वहिन नीली, हरी और गुलाबी तितली के पीछे भागी। जंगल घना होता गया, गहरा होता गया, काला होता गया। दिन में रात-सी नजर आने लगी। अन्त में भाई ने प्रसन्नता की एक चीख मारकर वसन्ती, लाल और हरी तितली को पकड़ लिया और चिल्लाकर कहा, "मैंने पकड़ ली! वहिन, मैंने तितली पकड़ ली! परन्तु मुड़कर जो देखा तो बहिन गायब है।"

"फिर क्या हुआ?" तारां की सांस-सी रुक गई। उसकी आंखें आश्चर्य से खुलती चली गईं।

फिर नन्हा भाई नन्ही वहिन को जंगल में ढूंढने के लिए निकला। पेड़ों से टकराता, डालियों से उलझता, कांटेदार झाड़ियों से गुजरता उस फड़फड़ाती तितली को हाथ मे लेकर, अपनी वहिन को आवाज़ देता हुआ, उसे ढूंढने लगा। इस प्रकार कई घण्टे गुज़र गए, पर उसकी वहिन उसे न मिली।"

"फिर वहिन कहां गई?"

"वहिन दूसरी तितली के पीछे गई थी ना। वह नीली, हरी और गुलाबी रंगवाली तितली के पीछे-पीछे भागती जा रही थी। तितली आगे-आगे उड़ती जा रही थी। जंगल घना होता गया। तितली अन्दर ही अन्दर जंगले मे उडती गई। वहिन पीछे से भागती गई। तितली को देखते-देखते उसे यह खयाल ही न रहा कि वह किधर जा रही है। आगे एक छोटी-सी ढलवान थी। तितली उसपर से उड़ गई। वहिन ने भी छलांग लगाई। नीचे जंगल में

गहरे पानी का एक चश्मा था। बहिन उसमे डूब गई।"

"हाय-हाय !" तारा के मुंह से अनायास ही निकला और उसकी बड़ी-बड़ी आंखों मे आसू तैरने लगे। "फिर क्या हुआ ?" उसने अपने आंसू पीते हुए कहा।

" जब दोपहर ढल गई और शाम होने को आई और भाई को उसकी बहिन न मिली तो वह थककर एक गिरे हुए चीड़ के पेड़ के तने पर बैठ गया और रोने लगा। इतने में उसके कानों में आवाज़ आई—अगर तुझे तेरी बहिन ढूंढ दू तो मुझे क्या देगा ?

" बच्चे ने चारो तरफ आश्चर्य से देखा, पर उसकी समझ मे न आया कि आवाज़ किधर से आई थी। इतने मे फिर वही आवाज उसके कानों मे आई—भैया को बहिन से मिला दू तो मुझे क्या देगा ?—यह उसके हाथो में फड़फडाने-वाली तितली थी। लाल, बसन्ती और हरी तितली जो वास्तव मे एक परी थी।"

"हा, तभी वह बोलती थी", तारा के चेहरे पर आशा और प्रसन्नता की एक हल्की-सी लहर दौड़ने लगी।"

" भाई बोला—यदि तू मेरी बहिन मुझसे मिला दे तो मैं तुझे आज़ाद कर दूंगा।

" 'पहले मुझे आज़ाद कर।'

" 'ले' भाई ने तितली हवा मे छोड़ दी।

" तितली ने अपने रंगीन पर फड़फडाए और फिर हवा में उडते-उड़ते बोली, 'अब मेरे पीछे-पीछे आ जा।'

" तितली उसे चट्टानों, झाड़ियो, टीलों, तंग घाटियोंवाले रास्तो से ले जाती हुई उस घाटी पर ले गई जिसके नीचे वही गहरा चश्मा बह रहा था, जहां उसकी बहिन डूबी थी। और जिस किनारे पर वह डूबी थी उसके समीप की घास पर गहरे ऊदे मखमली पत्तोंवाला तितलीनुमा एक फूल खिला हुआ था, जिसका एक गुच्छा तुम्हारे बालो में है।

" 'यहा है तुम्हारी बहिन'—तितली ने कहा।

" 'कहां ?'

" 'वह इस चश्मे में डूबकर मर गई है', तितली ने दर्द के स्वर में कहा।

" भाई अपनी बहिन के लिए रोने लगा और बसन्ती, लाल, हरी तितली को झूठा और धोखेबाज़ कहने लगा। तो तितली ने मुस्कराकर कहा—मैं तेरी

वहिन को फिर से ज़िन्दा कर सकती हूं, अगर तू एक वायदा कर ले।'

" 'मैं वायदा करता हूं।'

" 'वायदा करो कि आइन्दा कभी मासूम तितलियों को मारा नही करोगे।'

" 'मैं वायदा करता हूं'—भाई ने सच्चे दिल से कहा।

" 'तव तितली उससे बोली—अच्छा अब ऐसा कर, इस ढलवान से नीचे चश्मे के किनारे चला जा और जहां ऊदे रंग का फूल खिला है। उस फूल को तोड़ ले।'

" 'फूल तोड़ने से क्या होगा?'

" 'जैसा मैं कहती हूं, वैसा कर।'

" तव भाई उस कठिन ढलवान से फिसलता-फिसलता बड़ी कठिनाई से उस चश्मे के किनारे पहुंचा जहां वह ऊदे रंग का फूल खिला हुआ था। ज्यों ही उसने हाथ बढ़ाकर उस फूल को तोडा, फूल उसके हाथ से गायव हो गया और जहां से उसने फूल तोड़ा था, वहां पर उसकी वहिन पानी में भीगी हुई खड़ी थी।"

"अरे!" तारां खुशी से चिल्लाई।

"तव भाई-वहिन दोनों एक-दूसरे के गले मिले और खुशी से रोने लगे। उस समय गहरी शाम हो चुकी थी और जगंल से वापस जाने का रास्ता न मिलता था। पर उन दोनो तितलियों ने फिर उन वच्चों पर दया की। उन्होंने उन दोनों वच्चों को अपने परों पर विठला लिया क्योंकि वे परियां थी और अव उनके पर वहुत वड़े-वड़े और प्रकाशमय हो गए थे और रात के अंधेरे में ऐसे चमकते थे जैसे जुगुनू चमकता है। वे दोनों परियां इन दोनों वच्चो को अपने परों पर विठाकर, उन्हे जंगल के ऊपर उड़ा कर ले गई और आंखे झपकते ही उन्हें उनके मां-वाप के वाग में पहुंचा दिया जहां वे दोनों हंसी-खुशी रहने लगे।"

"वहुत अच्छी कहानी है," तारां ने खुश होकर वनफशे के फूलों का हार मेरे गले में डाल दिया।

मैंने कहा, "तव से वागों मे और चश्मों के किनारे ये पनेरी के फूल खिलते हैं, ताकि वच्चे उनसे अपना दिल वहलाएं और मासूम तितलियों की जान न लें।"

पर तारां का जी अब कहानी में न था। जिस समय से उसने यह सुन लिया था कि भाई को वहिन मिल गई तो उस समय से उसके लिए कहानी समाप्त हो चुकी थी और अब वह बैचेनी से इधर-उधर देखने लगी थी। अचानक उसकी नजर चश्मे से दूर पश्चिम की तरफ अंजीर के पेड़ पर पडी जिसपर अंगूर की बेलें चढ़ी हुई थीं और वह चिल्लाकर मुझसे कहने लगी, "आओ वहां तक दौड़ लगाएं और जो जीत जाए वह दूसरे को पांच नाशपातियां दे।"

"वाह!" मैंने कहा, "तुम कहा से नाशपातियां लाओगी? नाशपातियां तो मेरे बाग में हैं।"

"अगर मैं हार गई तो मैं तुमसे लेकर तुमको दे दूंगी," तारां ने बड़ी सादगी से कहा।

मुझे उसकी शर्त तो पसन्द न आई, पर तारां से खेलते में उसकी बहुत-सी शर्तें अच्छी या बुरी, दोनों प्रकार की माननी पड़ती थी। इसलिए मैंने दौड लगाई। तारां भी बहुत तेज दौड़ती थी और कई बार जीत भी जाती थी। किन्तु आज मैं जीत गया और उससे नाशपातिया मांगने लगा। मामले को पलटने के लिए तारां ने अंगूरों की एक ऊंची बेल की ओर इशारा किया जो अंजीर की एक बड़ी डाल पर पींग के आकार में लटकी हुई थी।

तारां बोली, "आओ उसपर झूला झूले।"

"और अगर बेल बीच में ही टूट गई?" मैंने पूछा।

"नही टूटेगी, अंगूर की बेल बड़ी पक्की होती है। देखते नही हो कैसे इस पेड़ को चारों तरफ से जकड़ रखा है।"

यह वाकई सच था। अंगूर की बेल ने वाकई पेड़ को जकड़ रखा था। जमीन से शुरू होती थी, जहां से पेड़ का तना शुरू होता था और तने से लिपटी हुई ऊपर तक चली गई थी। पेड़ को ऐसे में क्या महसूस होता होगा, यह तो मैं महसूस नही कर सका। एक ही पेड़ से गर्मियों मे अंगूर और अंजीर खाने को मिलते थे।

"पहले मैं पींग लूगा," मैंने कहा।

"नही, पहले मैं," तारां चिल्लाई।

"नही, शर्त मैं जीता हूं। इसलिए मैं पहले पींग लूंगा।"

"अगर तुम पहले पींग लोगे तो मैं वह पांच नाशपातियां नही दूंगी",

"मुझे स्वीकार है", मैंने कहा।

मैं वृक्ष के तने पर चढ़कर उस डाल पर पहुंच गया जहां से अंगूर की वेल पीग की रस्सी की सूरत में लटक रही थी। मैंने दोनो तरफ से उसको दोनों हाथों से पकड़ लिया और वीच मे खडा होकर पीग लेने लगा। दो-एक वार 'चर्र-चर्र' की आवाज पैदा हुई। कुछ छोटी-छोटी डालियां और वेल के पत्ते टूट गए। किन्तु वेल मजबूत थी और मैं मजे से पींग वढ़ाता रहा।

"नीचे उतरो, नीचे उतरो ; अब मेरी वारी है," तारां मुझे जमीन से देखकर चिल्लाई और वह झूला झूलने लगी। पहले तो वेल की पीग मे मजे से वैठी हौले-हौले झूलती रही। फिर खड़ी होकर उसने जो ज़ोर-जोर से पीग के झोटे लिए तो बेल जगह-जगह से 'करड़-करड़' की आवाज पैदा करने लगी।

मैंने घवराकर नीचे से चिल्लाकर कहा, "धीरे से तारां, धीरे से। वेल टूट जाएगी।"

तारां लापरवाही से बोली, "नही टूटेगी। देख लो मैं तुमसे पीग ऊंची वढ़ा सकती हूं। अगर कहो तो उस ऊपर की टहनी को पीग वढ़ाते-बढाते छू लूं।"

अंजीर की वह डाल वहुत ऊंची थी और जब मैं पीग वढ़ा रहा था उस समय प्रयत्न करने पर भी वह डाल मुझसे न छुई गई। और इसलिए मैंने ही दात पीसकर कह दिया, "छू लो तो दुअन्नी दूगा।"

तारां ज़ोर-ज़ोर से पीग वढाने लगी। पहले में, दूसरे में और तीसरे मे वह असफल रही, पर चौथे मे उसने इस जोर का झोटा लिया कि डाल उसके हाथों में आ गई। डाल तोड़कर वह ज़ोर से ख़ुशी से चीखी कि ठीक उसी समय अंगूर की वेल की पींग ने एक तरफ से अंजीर की डाल को छोड़ दिया और हवा मे ऊंची उड़ती तारां वड़ी तेजी से ज़मीन की तरफ गिरने लगी। मैंने घवराकर दोनो हाथ उसे बचाने के लिए फैला दिए और उसे थामने के लिए दौड़ा। वह सीधे ऊपर से नीचे मेरे वज़ुओं मे गिरी और मुझे भी अपने साथ गिराते हुए जमीन पर लौटती गई। कुछ मिनट तक हम दोनो गिरने के धमाके से ढलवान पर लुढ़कते गए। ढलवान का एक पत्थर मेरे सिर से लगा और उससे खून निकलना शुरू हो गया।

थोड़ी देर के वाद जव हम दोनों उठे तो दोनो लहूलुहान थे और दोनों रो रहे थे।

"तुम मुझे यहां लेकर आए थे," तारां रोते-रोते मुझे ताना देते हुए बोली, "वर्ना मैं तो बिशनू की गाय के लिए घास काट रही थी।"

"और अंगूर की बेल पर पींग लेने के लिए किसने कहा था ?" मैंने सिसकते हुए पूछा।

पर शुक्र है हम दोनों जीवित थे। यदि वह मेरे बाजुओं में न गिरती और बाद में ज़मीन पर गिरती तो शायद मर जाती और इसके बाद यदि मैं उसके साथ ही न लुढ़क जाता तो शायद मुझे भी उसके भार के धमाके से कड़ी चोट लगती। सिर में चोट अब भी खासी थी और लहू भी बह रहा था। परन्तु हम दोनों ज़िन्दा, रोते-रोते वापस घर पहुंचे तो पहले पिटाई और बाद में मरहमपट्टी के बाद मालूम हुआ कि मेरे सिर की हड्डी टूटने से रह गई है। किन्तु तारा की एक बांह की हड्डी टूट गई है।

मेरा घाव तो पन्द्रह-बीस दिन मे भर गया, किन्तु तारां डेढ़-दो महीने तक अपनी बांह को लकड़ी की खपच्चियों मे बंधवाए फिरती रही और अब······

अब दिल के बहुत-से घाव पुरकर बेनिशान हो चुके हैं किन्तु सिर पर उस घाव का निशान बाकी है। अब वहां पर एक काला मस्सा बन गया है। कभी-कभी बेखबरी मे जब उसपर हाथ लग जाता है तो मस्तिष्क से अबतक के तमाम खयाल गायब हो जाते है। मस्तिष्क में एक पींग-सी झूलने लगती है और अंगूर की बेल के शून्य मे एक शोख व तेज़ लड़की हवा मे उड़ती हुई नजर आती है·······।

घर मे एक अजीब-सी हालत थी। इधर मैं अपने मां-बाप का छोटा-सा इकलौता लड़का सिर की चोट पर पट्टी बांधे बिस्तर पर पड़ा था। उधर मेरी माजी गुर्दे के दर्द के कष्ट से अपने बिस्तर पर कराह रही थी। मांजी के गुर्दे का दर्द, जो इससे पहले पांच या छः दिन में मेरे पिताजी की दवा से कम हो जाता था और कम होते-होते गायब हो जाता था, अब किसी प्रकार दूर न होता था। बल्कि एक दिन दर्द इस तेजी से बढ़ा कि मांजी उस दर्द को सहन न करके बेहोश हो गईं।

उन दिनो से अधिक मैंने अपने पिताजी को और कभी परेशान न देखा होगा। हालांकि वे डाक्टर थे और इलाके मे उनके इलाज और हाथों के स्वास्थ्य-

वार्धक्य की धूम थी, किन्तु मेरी मांजी की दशा देखकर वे भी एक वार चकरा गए। मुझे याद है, वह उस रोज़ दिन-भर मांजी के पलंग की पांयती ही से लगे उनकी देखभाल करते रहे। और जव वे होश में आईं और फिर तेज़ दर्द से चीखने लगी तो पिताजी ने उन्हें एक नीद लानेवाला इन्जेक्शन दे दिया, जो वीमारी का इलाज तो न था, पर थोडे समय के लिए मांजी को आराम तो मिल गया था और वे शाम के छः-सात वजे तक सोती रही। जव वे होश में आईं उस समय पिताजी ने उन्हे एक और दवा पिलाई। तवसे माजी को गुर्दे का दर्द का दौरा तो नही पड़ा, पर दर्द वहुत कम हो गया।

मुझे याद है, दिन में पिताजी भिन्न-भिन्न पुस्तकों को उलटते-पलटते रहे थे और इसी दवा को ढूढते रहे थे। उन्होने कई पुस्तकों से अध्ययन करने के वाद इस दवा का नुस्खा लिखा था और अपने हाथ से उसे डिस्पेन्सरी में जाकर वनाया था।

रात के समय जव पिताजी विस्तर पर लेटने लगे तो मांजी ने अपने पलंग पर सिसकते हुए मेरे वारे मे पूछा, "काका कैसा है ?"

मेरे लिए तीसरा पलंग इस कमरे में बिछा दिया गया था। मैं अपने विस्तर मे दुवका हुआ अपने पुराने स्वभाव के अनुसार अपने मां-वाप की वातें सुन रहा था।

"ठीक हो जाएगा," मेरे पिताजी ने थकी हुई आवाज मे कहा।

थोड़ी देर तक कमरे में मौन रहा। फिर मांजी वोली, "यह मरी तारां इसका पीछा नहीं छोड़ती।"

"वच्चा है, अपनी आयु के वच्चों के साथ खेलना चाहता है।"

"लेकिन तारां तो मेरे वच्चे की जान लेगी। वह तो भगवान निरंकार परमेश्वर मेरे वच्चे का राखा है। उसने वचा लिया, वर्ना तुम्हीं वताओ मरने मे क्या कसर थी ? मैं तो कहती हूं, तुम इसे वड़े शहर ले जाकर वोर्डिंग में डाल दो।"

"कहने को तो हमेशा कहती हो लेकिन भेजने के अवसर पर ऐन वक्त पर मुकर जाती हो।"

"क्या करूं ? अकेला वच्चा है, मां का दिल है; नही मानता। तुम्हें क्या मालूम, तुमने किसीको नौ महीने कोख में रखा होता तो मालूम होता !"

"मुझे तो तुम्हारी चिन्ता है अब तो", मेरे पिता ने आंखों में पानी भरकर कहा, "मेरे खयाल में तुम्हारे गुर्दे में पथरी है।"

"यह तो तुम तीन साल से कह रहे हो।"

"पर मुझे अब विश्वास हो गया।"

"विश्वास हो गया तो शीघ्रता से आपरेशन करा डालो। भाग्य में हुआ तो बच जाऊंगी, वर्ना इस दर्द से तो छुटकारा पाऊंगी। अब यह दर्द मुझसे सहा नही जाता।"

"आपरेशन कैसे करूं ? मेरा हृदय कांपता है", पिताजी बोले।

"क्यो ? तुमने गुर्दे के कई आपरेशन किए हैं। अभी पिछले साल नक्कर का नम्बरदार गुलबाज़ खान गुर्दे का आपरेशन कराने आया था और तुमसे ठीक होकर चला गया। याद है ?"

"याद है, पर वह भी याद है जबकि तोरा गांव के पंडित तोताराम की पत्नी लक्ष्मी का आपरेशन किया था। वह भी तो गुर्दे का ही आपरेशन था। उसकी अर्थी इसी अस्पताल से उठी थी।"

"वह तो उसकी आई थी, आ गई। अगर मेरी आई होगी तो आ जाएगी। अच्छा होगा मैं तुम्हारे जीवन मे जान दूगी। इसपे ज्यादा स्त्री को और क्या चाहिए ?"

"तुम मरने की बातें करती हो। मैं तुम्हे लाहौर भेजने की सोच रहा हूं।"

"लाहौर !" मांजी आश्चर्य से बोली।

"हां, लाहौर। वहां मेरे उस्ताद कर्नल भाटिया रहते है। वे गुर्दे का आपरेशन इस सफाई से करते हैं, जिस तरह मैं अपनी 'शेव' करता हूं। अगर वे तुम्हारा आपरेशन करें तो मुझे कोई चिन्ता नही।"

"पर लाहौर हम कैसे जा सकते हैं ?" मांजी ने सोचते हुए पूछा, "तीन दिन तो घोड़ों का सफर है। फिर एक दिन लारी का सफर है। फिर एक रात रेल-गाड़ी का सफर है, और फिर पैसा।"

"हां, पैसे ही की तो बात है," मेरे पिताजी ने चिन्तित होकर कहा, "आने-जाने, अस्पताल में रहने और आपरेशन के खर्चे वगैरह में दो हज़ार से कम क्या खर्च होगा ?"

"पर दो हज़ार कहां से लाएंगे ?" मांजी ने परेशान होकर पूछा, "यहां जो

प्रति मास तुम लाते हो वह प्रति मास खर्च हो जाता है और ऊपर की आमदनी की तुमने सौगंध खा रखी है।"

"वह तो ठीक है", पिताजी ने बात को पलटते हुए कहा, "किन्तु यदि तुम अपना ज़ेवर दे दो......।"

"अपना ज़ेवर दे दूं," मांजी इस आश्चर्य से बोली जैसे किसीने अचानक उनके गले पर छुरी रख दी हो और उनका गला रूंध गया हो। "अपनी जान बचाने के लिए वह ज़ेवर दे दूं, जो मैंने अपने काके की बहू के लिए रखा है। तुम कैसी बातें करते हो ? मैं तो जब अपने काके का व्याह करूंगी.........। परमेश्वर उसकी उमर करे। वह जब जवान होगा और मैं उसके लिए अपने हाथो से उसकी बहू की आरती उतारते समय अपना सारा ज़ेवर अपनी बहू के गले में पहना दूंगी।"

मांजी देर तक चुप रही। कमरे की मद्धम-मद्धम रोशनी में उनकी आखें असाधारण रूप से चमक रही थीं। वह किसी रंगीन कल्पना मे डूब गई थीं। जैसे उनका बेटा जवान हो गया, जैसे वह घोड़े पर चढ़ा बरात के आगे-आगे चल रहा है; जैसे शहनाई बज रही हो, जैसे डोली घर पर आ गई हो, जैसे मांजी घूंघट उतारकर उसका चांद-सा मुखड़ा देख रही हों। एक मां मौत के किनारे गुर्दे के दर्द से बेचैन होकर भी कैसे-कैसे स्वप्न देखती है ?—पर कुछ अपने लिए नही, कभी अपने पति के लिए, कभी अपने बच्चे के लिए। पर कुछ अपने लिए नही। यह वास्तविकता मे अर्धप्रकाशित अंधेरे मे किसी असाधारण भाव से चमकती हुई आंखों से जानता हूं।

"सो गए ?" मेरी मांजी मेरे पिता को बहुत देर से मौन देखकर बोली।

उत्तर में पिताजी कुछ नही बोले। हौले-हौले गुनगुनाने लगे।

"फिर वही सिरसड़ा गीत !" माजी तुनककर बोली, "रात का वक्त है, भगवान को याद करो। कोई ईश्वर-भजन गाओ।"

पर पिताजी धीरे-धीरे वही गुनगुनाते रहे और मैं उस गीत की लोरी सुनते-सुनते सो गया।

माजी को बिस्तर पर पडे-पड़े बीस दिन व्यतीत हो गए थे। दर्द कभी कम होता था कभी बढ़ जाता था। किन्तु किसी प्रकार समाप्त न होता था। मांजी

अत्यन्त कमज़ोर हो गई थी और पिताजी के चेहरे पर परेशानी की रेखाएं गहरी होती जा रही थी। सारे घर में एक भयानक उदासी का वातावरण छाता जा रहा था। मांजी जितना अपने आपरेशन पर ज़िद करती, पिताजी उतनी ही कठोरता से उसे टालते जा रहे थे। यद्यपि उन्हे मालूम था कि उसका परिणाम भयंकर होगा, किन्तु वे टाले जा रहे थे। उनके चेहरे-मोहरे से अनुमान होता था जैसे उनके हृदय के अन्दर एक सतत संघर्ष जारी है और वे कोई निर्णय नही कर सकते कि वे क्या करें ?

एक रात जब उनके ख्याल के अनुसार मैं सो गया था और घर के दूसरे लोग भी नीद में बेखबर थे, वे धीरे से अपने बिस्तर से उठे। दीवार से टगे कोट की जेब टटोलकर उन्होने कोई वस्तु निकाली और उसे मांजी के सिरहाने जाकर उन्हे देते हुए बोले।

"इसे रख लो।"

"क्या है ?"

"दो हजार रुपये की थैली।"

माजी एकदम बिस्तर से उठ बैठी। लैम्प की रोशनी तेज़ करके उन्होने मटियाले-नीले रंग की धारीदार थैली के अन्दर झांककर देखा। उसमें से नोटो की गड्डियां निकाली। उन्हे बडे आत्मविश्वास से गिना। पूरे दो हजार रुपये थे।

"कहां से लाए ?"

पिताजी चुप रहे।

"मैं पूछती हूं—कहां से लाए ?" मांजी ने जिद की।

"रिश्वत ली है," पिताजी सहमकर बोले।

मांजी सन्नाटे में आ गईं। नोट उनके कमज़ोर हाथो मे कांपने लगे।

पिताजी अब धीरे-धीरे कहने लगे, "वह मौजा पोखर के राजपूतो मे लड़ाई हो गई। दो सगे भाइयो मे लड़ाई हो गई थी, एक खेत पर। ठाकुर चैनसिंह और ठाकुर नैनसिंह दोनों बडे जवान और तगड़े राजपूत है और अत्यन्त धनी हैं। रुपये की उनको परवाह नही और देखा जाए तो जमीन की भी उनको परवाह नहीं क्योकि दोनो भाइयों के पास राजा साहब की दी हुई जागीरें है। किन्तु यह खेत का झगड़ा आन का प्रश्न बन गया है। दोनो भाई छुरिया लेकर मुकाबले पर आ गए। दोनो भाई घायल होकर कल से मेरे अस्पताल मे पड़े हैं।"

"हां, तुमने कल बताया था।"

"पर ठाकुर चैनसिंह को जो चोटें लगी है, वह गहरी चोटे है और नैनसिंह को जो खरोचें लगी है, वे मामूली चोटें है। यदि आपस में सुलह-सफाई न हो और मुकदमा चले तो नैनसिंह को तीन वर्ष की सजा तो अवश्य होगी। इसलिए नैनसिंह चाहता है कि मैं अपनी डाक्टरी रिपोर्ट में साधारण खरोंचो को गहरी बना दूं ताकि चैनसिंह को तीन वर्ष की सज़ा हो सके। उधर चैनसिंह यह चाहता है कि उसके गहरे घावो को और भी गहरा लिखा जाए ताकि नैनसिंह को तीन वर्ष की सजा हो सके। दोनों कल से मुझे रिश्वत दे रहे हैं। चैनसिंह की चोटे तो गहरी हैं इसलिए वह पांच सौ रुपये पर आकर रुक गया। किन्तु नैनसिंह आज दो हजार रुपये तक बढ़ गया। इसलिए मैंने उससे रुपये ले लिए।"

मां ने घबराकर कहा, "यह दो हज़ार रुपये लेकर अब तुम झूठी रिपोर्ट लिखोगे?"

"हा," पिताजी बोले, "किन्तु मैं न वह लिखूगा जो नैनसिंह चाहता है, न वह जो चैनसिंह चाहता है।"

"फिर क्या लिखोगे?"

"मैं चैनसिंह की गहरी चोटों को हल्की चोटों मे परिवर्तित करूंगा। दोनो भाई-भाई है। दोनो की चोटे साधारण रहेगी तो डाक्टरी रिपोर्ट के बाद सुलह-सफाई मे आसानी रहेगी।"

"तो जैसे अपने ढंग से तुम एक नेक काम कर रहे हो," मांजी के स्वर मे व्यंग्य की एक हल्की-सी चुभन थी।

पर मैं देख रहा हूं कि उनके हृदय में भी एक संघर्ष था। न वे थैली लेना चाहती थीं, न वापस करना।

कभी उनका हाथ आगे बढता था, कभी पीछे हटता था। अजीब संघर्ष था!

फिर मांजी जैसे अपने-आपको कोसते हुए बोली, "काके दे बावू, मुझ तत्ती के लिए तूने रिश्वत ले ली! मुझ पापण की जान बचाने के लिए इस देवता-स्वरूप आदमी ने रिश्वत ले ली! जिसने आज तक किसीसे हराम का एक पैसा न लिया था…भगवान!"

मांजी देर तक सिसकती-कराहती रही। अपने-आपको कोसती रही। किन्तु

पिताजी फिर कुछ न बोले। मांजी ने नोटों की गड्डियां वापस थैली में डाल दी और उन्हें अपने सिरहाने रखकर लैम्प की बत्ती नीची करके लेट गईं। लेटते समय उन्होंने मेरे पिताजी की चारपाई की ओर देखा। किन्तु पिताजी ने लिहाफ अपने मुंह पर ओढ़ लिया था।

कुछ क्षणों के मौन के पश्चात् मांजी ने पूछा, "सो गए ?"

"नही," मेरे पिताजी ने अपना मुंह लिहाफ से निकाले बिना उत्तर दिया।

'तो क्या सोचते हो ?" मेरी मांजी ने पूछा।

मेरे पिताजी ने एक क्षण के लिए अपना आंसुओं से तर-बतर चेहरा लिहाफ से बाहर निकाला और बोले, "काके दी मा, बहुत-सी पवित्र पुस्तको मे लिखा है कि हज़रत-आदम जो हमारे पुरखे थे, जिनसे हमारी नस्ल चलती है—एक बार खुदा के हुक्म की अवज्ञा करने पर स्वर्ग से बाहर निकाले गए थे। पर मैं सोचता हूं हज़रत-आदम ही नहीं स्वर्ग से बाहर निकाले गए, बल्कि हर इन्सान अपने जीवन में एक स्वर्ग से बाहर निकाला जाता है।"

इतना कहकर मेरे पिताजी ने फिर लिहाफ ऊपर कर लिया।

मैं उस रात उनका आंसुओ-भरा चेहरा दोबारा न देख सका।

आज लगभग आधी शताब्दी गुजरने के बाद यह लिखते हुए वही आंसुओं-भरा चेहरा मेरे सामने आता है और मैं सोचता हूं कि मेरे पिताजी तो शायद एक ही बार स्वर्ग से निकाले गए थे, किन्तु मैं और मेरे जैसे हज़ारो, लाखों, करोड़ों लोग अनगिनत बार इस जीवन में स्वर्ग से निकाल नरक मे डाल दिए जाते है। और मैं सोचता हू कि जीवित रहने का यह कौन-सा ढंग है ? और मैं स्वप्न देखता हूं और आशा रखता हूं दिन-रात उस नई दुनिया की जिसके स्वर्ग तुल्य एकान्त से कभी कोई इन्सान बाहर निकाला न जा सकेगा !

शानो

बचपन के चेहरो में मुझे शानो का चेहरा बहुत याद आता है। वह एक दुबली-पतली, कोमल शरीरवाली स्त्री थी। आयु लगभग तीस वर्ष के आसपास, कद बूटा-सा, होंठ पतले-पतले और गुलाबी आंखें बड़ी-बड़ी, पर डूबती हुई-सी। त्वचा की रंगत संगमरमर की तरह श्वेत। वह सदा माथे पर जरा-सा घूंघट काढे, सफेद धोती में लिपटी नजर आती। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एक ऐसे चित्र के समान था जो दिन पर दिन धुंधला होता जा रहा हो। उसे तपेदिक था।

उन दिनों तपेदिक का कोई सफल इलाज मालूम न हुआ था। प्रायः रोगी मर जाते थे। बहुत कम ऐसे भाग्यशाली होते थे जो किसी न किसी प्रकार बच जाते थे। अपनी छोटी-सी सीमित दुनिया मे अपर्याप्त साधनो के साथ मेरे पिताजी को ओषधि-विज्ञान में प्रयोगात्मक अनुसंधान करने की बहुत रुचि थी। वह प्रायः मुश्किल मरीज़ो को हाथ मे लेते थे और उनमे से एक भी उनके प्रयास से अच्छा हो जाता तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो जाते और कई दिनो तक उनका मूड बच्चों के समान ताजा, खिला हुआ और प्रसन्न रहता।

स्त्रियों के लिए अस्पताल मे एक पृथक् वार्ड था, पर मेरे पिताजी ने शानो को उस वार्ड मे न रखा। उस वार्ड से कोई सौ गज परे बैरकनुमा एक बिल्डिंग थी, जिसपर टीन की छत थी और जिसमे छः कमरे साथ-साथ बने हुए थे। उनमे से दो कमरों मे अर्दली रहते थे। एक कमरे में अस्पताल के पुराने कोड, चिलमचियां और विभिन्न प्रकार का कबाड़ भरा हुआ था। चौथा कमरा सीनियर कम्पाउण्डर साहब ने अपने दोस्तो के साथ ताशबाजी और गप्पबाजी के लिए नियत कर रखा था। पाचवे कमरे मे माली ने बागबानी का सामान

रखा हुआ था। छठे कमरे को कोई प्रयोग में लाने को तैयार न था, क्योंकि इस कमरे के विषय मे प्रसिद्ध था कि जो मरीज़ इसमें आकर रहता है, मर जाता है। मेरे पिताजी को इस प्रकार की बातों पर विश्वास न था। परन्तु जब लगातार तीन-चार इसी प्रकार की दुर्घटनाएं संयोगवश घटित हुईं तो उन्होने लोगों की इच्छाओं का सम्मान करते हुए इस कमरे को खाली रहने दिया।

शानो को वे इस कमरे में नही रख सकते थे। इसलिए उन्होंने सावधानी के लिए सीनियर कम्पाउण्डर का गप्पबाजी का कमरा, जो सबसे अच्छी दशा में था, उससे छीन लिया और उसमें शानो को रख दिया। सीनियर कम्पाउण्डर ने इस बात पर एतराज़ किया, पर पिताजी का विचार था कि कम्पाउण्डर को जब एक छोटा-सा बंगला उसके रहने के लिए मिला हुआ है तो उसे उसी बंगले को अपनी और अपने दोस्तों की तफरीह के लिए प्रयोग करना चाहिए। सीनियर कम्पाउण्डर मोतीराम दिल ही दिल मे बहुत जला। परन्तु उसके अफसर की आज्ञा थी, अतः उसे यह कमरा खाली करना पड़ा। वह तो उसी दिन से शानो का दुश्मन हो गया।

प्रायः रोगिणियों के साथ उनकी देखभाल और सेवा करने के लिए उनके बाप, भाई, बहिन, पति या दूसरे रिश्तेदार आते हैं और इलाज के बीच वहीं अस्पताल के बरामदे मे पड़े रहते हैं। किन्तु शानो के साथ उसका जेठ आया था और उसे अस्पताल में डालकर चला गया था। वह अपने मौजा (गांव) का सबसे धनी आदमी था। वह यदि चाहता तो शानो के रहने-सहने का प्रबंध कर सकता था और प्रायः अमीर रोगी इलाज के दौरान मे ऐसा ही करते थे। किंतु उसने शानो के सिलसिले मे किसी तरह का उत्तरदायित्व लेने से इन्कार कर दिया और कुछ दिन उसके पास रहकर वापस चला गया।

शानो सूरज के बाहर निकलते ही अपनी खाट कमरे से बाहर निकालकर धूप मे ले आती और बिस्तर पर लेटकर धूप सेकती, आराम करती या सो जाती या खाना बनाती। वह बहुत कम बोलनेवाली सभ्य स्त्री थी और किसी-ने आज तक उसके मुंह से एक कड़वी बात तक न सुनी थी। किन्तु मुझे इस बात पर बड़ा आश्चर्य था कि वह चाहे किसी हालत में हो हमेशा अपने माथे में घूंघट काढ़े रहती। पर एक बार मैंने उसे घूंघट के बिना देख लिया—केवल एक क्षण के लिए और उसे देखते ही मैं भौचक्का रह गया। हुआ यह कि मैं

अपने बंगले से अस्पताल की ओर दौड़ा-दौड़ा आ रहा था, पिताजी को दोपहर के खाने पर बुलाने के लिए।

धूप सुहावनी थी, किन्तु हवा जरा तेज चल रही थी और शानो बाग के एक कोने में बैठी फूलों की क्यारियों मे खुरपी लिए गोड़ी कर रही थी कि इतने मे तेज हवा का झोंका आया और उसका छोटा-सा घूंघट उलट गया और मैं यह देखकर भौंचक्का रह गया कि उसके सिर पर एक बाल भी न था। सारा सिर इस प्रकार मुंडा हुआ था जिस तरह मेरे पिताजी का चेहरा शेव के बाद होता है।

जब मैंने पिताजी से इस आश्चर्यजनक बात के विषय में पूछा तो उन्होने मुझे बताया कि शानो एक कुमारी विधवा है।

"कुमारी विधवा है तो क्या हुआ ?" मैंने पूछा, "हर स्त्री के सिर पर बाल होते हैं, पर यह तो अपने बाल मुंडाती है।"

"स्वयं नही मुडाती है। इसके बाल मूंडे गए हैं। हमारे इलाके के ब्राह्मणों में यह प्रथा आम है कि यदि कुमारी लड़की विधवा हो जाए तो उसके सिर के सारे बाल मूंड दिए जाते है।"

"कुमारी लड़की विधवा कैसे हो सकती है ?" मैंने सोच-सोचकर पूछा।

पिताजी मुस्कराए, बोले, 'जिस दिन शानो का व्याह हुआ था, उसी दिन लग्न-मण्डप मे ही उसका पति मर गया था। इसलिए वह कुमारी विधवा है।"

"तो क्या उसकी दूसरी शादी नही हो सकती ?"

"नही।"

"क्यों नही ?"

"बस ऐसा ही दस्तूर है।"

"ऐसा कैसा यह दस्तूर है ?" मैंने झल्लाकर पूछा। मां जी इस वक्त ज़रूर मुझे इस प्रश्न पर मारती, क्योंकि औंधे-सीधे प्रश्न करने का मेरा आरम्भ से स्वभाव था। किन्तु पिताजी मुझे मेरे प्रश्नोत्तर पर कभी न टोकते थे, बल्कि प्रसन्न होते थे। किन्तु इस समय मेरे प्रश्न का वे भी उत्तर न दे सके और धीरे-धीरे गुनगुनाने लगे।

"फटी जब कान इस वन में···"

यह उनका पेटेण्ट तरीका था। जब वे किसी प्रश्न का उत्तर न देना चाहें

या आगे बात न करना चाहे तो इसी प्रकार बीच मे से बात छोड़कर गुनगुनाने लगते थे।

"यदि उसके सिर पर बाल हो तो वह और भी अच्छी लगे," अन्त मे मैंने कह दिया।

पता नही बाप ने अपने बेटे की सौन्दर्यप्रियता को किस दृष्टि से देखा, पर उन्होने इसपर भी मुझसे कुछ कहा नही। बदस्तूर गुनगुनाते रहे। इतने में घर आ गया और हम लोग खाने की मेज पर चले गए और बात आई-गई हो गई।

उस दिन मैंने कम्पाउण्डर मोतीराम को अपने दोस्त पूरनमल शाह से बातें करते हुए सुना।

"शाह जी, कुछ मालूम है ? डाक्टर साहब को शानो मे दिलचस्पी पैदा हो गई है !"

"ऐं ? यह सच है ?"

"बिलकुल। आज मैंने खुद अपने कानो से सुना और आंखो से देखा। वे शानो से कह रहे थे कि तू अपने सिर पर बाल बढ़ा ले। वह देर तक इनकार करती रही, पर वे बराबर जिद करते रहे। अन्त में वह मान गई और मानती कैसे नही ? और जब वह मान गई तो डाक्टर साहब मुझे अलग ले जाकर बोले—बाल मुंडे जाने से इस स्त्री की भावनाओ पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। यह स्त्री अब अपने-आपको स्त्री ही नही समझती। मैं इसके अन्दर स्त्रीत्व जगाना चाहता हूं ताकि इसके जीवन में थोड़ी-सी प्रसन्नता आ सके और यह अपने रोग का प्रतिरोध अधिक बढ़े हृदय से कर सके। यह एक मनोवैज्ञानिक रहस्य है मोतीराम !"

"डाक्टर साहब बड़े मनोवैज्ञानिक होते जा रहे हैं !" पूरनमल शाह ने व्यंग्यपूर्वक कहा।

"अभी आगे देखो और किन बातों पर यह अपनी कुशलता दिखाते है··· ही···ही ···", मोतीराम हंसकर बोला। उसकी हंसी मे बेहद कड़ुवापन था जो मुझे ज़रा अच्छी नही लगी। यदि पिताजी ने शानो को बाल रखने के लिए कह दिया तो क्या बुरा किया ? एक बच्चा भी बता सकता है कि स्त्री के सिर पर बाल अच्छे लगते है और जब मेरी मांजी बालो मे जूड़ा करके उसमें कभी-कभार

एक फूल लगा लेती हैं तो वे और भी अच्छी लगती हैं। यह मोतीराम की बुद्धि को क्या हुआ है ?

मोतीराम मुझे अपने पास खड़े देखकर और अपने दोस्त की बातें सुनते देखकर कुछ उदास हुआ। किन्तु उसने ढिठाई से मेरा कान पकड़ लिया और जैसे मुझे चेतावनी के ढंग मे समझाते हुए बोला, "बच्चू, अपनी मां को तार देकर बुला ले, वर्ना डाक्टर हाथ से चला।"

यह कहकर उसने मेरा कान छोड़ दिया और अपने दोस्त पूरनमल शाह के साथ अपने छोटे-से बंगले की ओर चल दिया।

मुझे उसकी बातों पर अत्यन्त क्रोध आया। किन्तु मैं छोटा-सा लड़का था। क्या कर सकता था ? और मांजी तो यहां न थी। वे तो लाहौर के अस्पताल मे पड़ी थी। पिताजी एक महीने की छुट्टी लेकर उनके आपरेशन के सिलसिले मे लाहौर गए थे। मैं भी साथ गया था। आपरेशन सफल हुआ था, किन्तु डाक्टरो का अनुमान था कि अभी मांजी को तीन महीने और अस्पताल में रहना पडेगा। पिताजी को आगे छुट्टी न मिली थी। इसलिए वे मांजी को अस्पताल में छोड़कर, अपने छोटे भाई की देखभाल में देकर, मुझे साथ लेकर वापस आ गए थे और अपने अस्पताल का कार्य संभाल लिया था।

प्रति सप्ताह मांजी की चिट्ठी आती थी जिसमे मेरे लिए बहुत-सा प्यार होता था। एक बार उन्होने मेरे लिए कन्धारी अनारो का पार्सल भी भिजवाया था, क्योंकि हमारे इलाके मे कन्धारी अनार नही होते थे और तारा तो कन्धारी अनार के दाने खाकर हैरान हो गई थी। उसका खयाल था कि हमारे जंगल के दुरीनों से बड़े अनार कहीं नही होते।

"अरे दुरीन तो इस अनार के मुकाबले मे हेच है।" तारा को मानना पड़ा था और कन्धारी अनार देखकर उसे लाहौर के बारे में दूसरी बातो के सिलसिले में भी अब विश्वास करना पडा था जो मैंने लाहौर से वापस आने पर उसे सुनाई थी और जिसपर वह अब तक किसी तरह विश्वास न कर सकी थी। किन्तु कन्धारी अनारो ने उसे बिलकुल कायल कर दिया और अब उसने यह सब कुछ सुनकर तय कर दिया कि अब तो वह केवल मुझीसे विवाह करेगी और शादी करके लाहौर जाकर रहेगी।

किन्तु इस बीच मेरा इरादा बदल गया था। क्योंकि अब मैं उस लड़की से

शादी करना चाहता था जो मेरी मांजी की नर्स की सबसे छोटी लड़की थी और जो मेरे साथ गेंद खेलती थी और सुन्दर फ्राक पहनती थी। बालों मे रिबन लगाती थी। इसपर मेरी और तारां की बहुत लडाई हुई थी, और तीन दिन तक हमने एक-दूसरे से बातचीत नही की। किन्तु लाहौर बहुत दूर था और यहां तारां के सिवा और कोई मेरे साथ खेलनेवाला न था। इसलिए धीरे-धीरे वह सुन्दर फ्राकवाली लड़की मेरे मस्तिष्क से लोप हो गई और मैं फिर तारां के साथ खेलने लगा।

मैंने मोतीराम की भयानक मूछो के भय से पिताजी को उसकी बातें नहीं बताईं। मोतीराम बड़ा ही कमीना और दुष्ट प्रकृति का आदमी था। और प्रायः मेरी उल्टी-सीधी शिकायते करके मुझे मांजी से पिटवा दिया करता था। वह न केवल मुझसे बल्कि तमाम बच्चों से घृणा करता था। उसके अपना भी कोई बच्चा न था और उसकी पत्नी एक सूखी-सड़ी चिड़चिडे स्वभाववाली स्त्री थी, जो दिन-रात कभी माली, कभी चपरासी, कभी अर्दली की पत्नी से लड़ा करती थी। मैं और तारां अब कभी उन लोगों के घर के पास न फटकते थे। फिर भी मोतीराम या उसकी पत्नी मेरी मां से शिकायत का कोई न कोई अवसर निकाल लिया करती थी।

शानो के आ जाने से पिताजी की अनुसंधानप्रियता फिर से उभर आई थी। वे वैद्यक और यूनानी में भी कुछ सुध-बुध रखते थे और उन्होने कई प्रकार के नुस्खे और कई प्रकार के इलाज के तरीके, अलग-अलग और मिला-जुलाकर भी, शानो पर प्रयोग करने प्रारम्भ कर दिए और शानो का स्वास्थ्य अच्छा प्रतीत होने लगा।

मुझे तो वह उस दिन से अच्छी लगने लगी थी जिस दिन से उसके सिर के बाल बढ़ने आरम्भ हो गए थे और अब तो उसके बाल लाहौर की मेमों की तरह कन्धे तक आ चले थे। काले बल खाते हुए बालो में उसका श्वेत मुख एक मोम की गुड़िया के समान शान्त नज़र आता। सुबह और शाम वह अपना खाना स्वय बनाती थी। स्वयं अपने बर्तन साफ करती थी। पिताजी ने उसके कमरे की दोनो खिड़कियो के लिए नीले रंग का पर्दा लाकर दिया था, जिसपर उसने स्वयं ही बेलबूटे काढ़े थे। धीरे-धीरे उसने अपने कमरे के सामने फैली हुई घास के एक टुकड़े पर सन्थे की झाड़ियों का बाड़ लगा दिया और दो रुइया

क्यारियों में फूल लगा दिए। वाड़ पर हरी तोरी और अल की वेलें बढ़ा लीं। और वह जो घर से अकेली आई थी, एक घुटे-गले वातावरण से, तबाहहाल और ज़िन्दगी से वेज़ार आई थी, अस्पताल के खुले वातावरण में एक सहृदय डाक्टर की सहानुभूति पाकर जीवन में आशा, आशा में भावना और भावना में रस टटोलने लगी। उससे पहले वह मर जाने की इच्छा लेकर आई थी। जिसने जीवन मे कुछ न देखा हो, जो पन्द्रह वर्ष की आयु मे कुमारी विधवा हो जाए, जिसका भविष्य एक मुडे हुए सिर के समान सपाट हो जाए, जिसके घरवाले उसके मर जाने की दिन-रात प्रार्थना करते हों—उसे यदि तपेदिक न होगा तो और क्या होगा।

शानो तो जानती थी, कि उसका जेठ उसे इसीलिए अस्पताल में लाकर छोड़ गया है ताकि वह उनकी आखो से ओझल, दूर, अपने गांव और खेतों से, मर जाए और किसी रिश्तेदार को उसकी सेवा-शुश्रूषा न करनी पड़े। और जब वह मर जाएगी तो उसका जेठ उसके स्वर्गीय पति की ज़मीनों पर कब्ज़ा कर लेगा, जिसकी वह अब तक उत्तराधिकारिणी थी। इसलिए उसका जेठ चाहता था कि वह शीघ्रातिशीघ्र मर जाए और यही शानो चाहती थी।

जब वह अस्पताल में आई थी तो आरम्भ के बीस-पच्चीस दिनो में उसने भी यही चाहा था कि वह जितनी शीघ्र मर जाए उतना ही सबके लिए अच्छा है। कुमारी विधवा तो धरती के लिए लानत और समाज के लिए गाली और जीवन के लिए एक बोझ होती है। जितना शीघ्र यह बोझ आग की नज़र हो जाए, अच्छा है।

किन्तु यह किस प्रकार का डाक्टर था जो उसे बता रहा था कि जीवन हर इन्सान का एक पवित्र अमानत होता है, चाहे वह विधवा हो चाहे विवाहित, अमीर हो या निर्धन। धरती की लानत वे लोग हैं जो पन्द्रह वर्ष की कुमारी विधवाओ को विवाह करने से रोकते हैं। समाज की गन्दगी वह इन्सान हैं जो गरीब स्त्रियो का हक मारते हैं और वही लोग इस जीवन पर बोझ हैं जो किसी दूसरे को प्रसन्न नही देख सकते।

शानो ने इस दयालु पुरुष की दृष्टि देखी। उसकी मधुर बातें सुनी। उसके हाथो का स्पर्श महसूस किया, जब वह उसकी नब्ज़ टटोलता था। और धीरे-धीरे उसके बुझे हुए दिल मे एक शोला-सा उभरने लगा। जीने की इच्छा जाग्रत् होने

लगी और लिहाफ के अन्दर रातों के गुनगुने सन्नाटे में किसीका खयाल ठीक होने के लिए मजबूर करने लगा। दिन पर दिन उसकी खासी की तेजी कम होने लगी। बुखार भी घटने लगा, और सफेद धुंधले गालों पर सुर्खी की गुलावी लहर दौडने लगी और मेरे पिताजी को ऐसा महसूस हुआ जैसे वे इस धुंधली मिटती हुई तस्वीर में रंग भर रहे हैं, जैसे वे केवल डाक्टर ही नही, मुसव्विर भी है।

जब शानो के बाल कन्धे तक आने लगे तो उसने एक दिन शर्मा कर डाक्टर साहब से एक आईने और कंघी की मांग की। स्त्री जिससे प्रेम करती है उसपर अपना अधिकार जताए विना नही रह सकती। पुरुष जिससे प्रेम करता है उसपर हुकूमत जताए विना नही रह सकता। इसलिए डाक्टर साहव ने उत्तर दिया, "इस शर्त पर आईना और कंघी लाकर दूगा कि तुम खुशवूदार तेल भी प्रयोग करो।"

"हाय! खुशवूदार तेल!! मैं एक विधवा खुशबूदार तेल कैसे प्रयोग कर सकती हूं?"

"कर सकती हो, करना पड़ेगा," डाक्टर साहव बोले, "यदि जीवित रहना चाहती हो तो ज़िन्दगी और उसकी महक और उसकी तमाम सुन्दर चीजो से प्यार करना होगा। वे लोग कितने गलत है जो यह समझ लेते है कि जब किसी स्त्री का पति मर जाता है तो उसकी विधवा का शरीर भी मर जाता है। ऐसा तो बहुत कम होता है। वर्ना कुछ भी नही होता। कितनी ही इच्छाएं, कितने ही अरमान, आत्मा और शरीर की मांगें जीवित रहती हैं।"

शानो की आंखों में आंसू आ गए। "वे जब मरे थे तो मैं कुछ भी नही जानती थी। मैंने तो ठीक तरह से उनकी सूरत भी न देखी थी। मैं उन्हे पहचानती तक न थी। पर लोगों ने मुझे बताया कि मैं विधवा हो चुकी हूं। किन्तु मैं क्या बताऊं डाक्टर साहव, कि मेरे दिल की कोई आरज़ू विधवा न हुई थी। पन्द्रह वर्ष तक वे लोग मुझे विश्वास दिलाते रहे—भूखा रखकर, ताने देकर मार-पीटकर—मुझे दिन-रात कुचलते रहे और मैं उस खलिहान की तरह सबके पाव मसल डाली गई जिससे अनाज का अन्तिम दाना भी निकाल लिया गया हो, क्योंकि शास्त्रो मे ऐसा ही लिखा है।"

"जीवन से वड़ा शास्त्र कोई नही है।"

"राम-राम! क्या कहते हो डाक्टर साहव?" शानो घबराकर बोली,

"ऐसी बातें न बोलो, प्रलय आ जाएगी।"

"मैं तो प्रतिदिन यही बोलता हूं फिर प्रलय क्यों नहीं आ जाती।" डाक्टर साहब इतना कहकर हंसकर बाहर चले गए।

पर उनके जाने पश्चात् शानो घबराकर श्रीराम के चित्र के सामने, जो उसने अपने कमरे में लगा रखा था, हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। कांपते हुए स्वर में बोली, "हे भगवान! इनको क्षमा करो। यह तो ऐसे ही हैं। बे-सोचे-समझे कह जाते हैं। उनका जो अपराध हो उसका दण्ड मुझको दो।"

यही तो मुसीबत है और इसी कारण स्त्री पर प्रायः मुसीबत आती है कि वह जिससे प्यार करती है उसका हर अपराध और हर इल्ज़ाम अपने सिर पर लेने को तत्पर रहती है, और पुरुष जिससे प्यार करता है, उसका कोई अपराध क्षमा नहीं कर सकता।

जिस दिन से डाक्टर साहब ने शानो के लिए आईना, कंघी और खुशबूदार तेल मंगा दिया, उस दिन से अस्पताल में चिमगोइयां आरम्भ हो गईं। मोतीराम ने अपने दोस्त पूरनमल शाह से कहा, "हद हो गई यार! आज सुबह शानो कंघी-चोटी करके अपने कमरे से बाहर निकली तो डाक्टर साहब ने उसके बालों में डेलिया का इतना बड़ा सुर्ख फूल लगा दिया!"

"पर लौंडिया को भी तो देखो," पूरनमल बोला, "कैसी गदराती हुई नाशपाती की तरह भर गई है।"

"अरे! जिसे अच्छे से अच्छा खाने को मिले, पहनने को मिले, एक सुन्दर कमरा रहने को मिले, बाग घूमने को मिले—वह लौंडिया नाशपाती तो क्या सेब की तरह सुर्ख हो जाए तो उसमें क्या ताज्जुब है?"

फिर वह मेरी ओर देखकर आगे बढ़ा और मेरे कान खींचकर बोला, "बच्चू, अब भी कहता हूं—अपनी मां को बुला लो, वर्ना डाक्टर तो गया हाथ से।"

मेरे पिता शानो को दिन में चार बार देखने जाते थे। एक तो सुबह उठकर, जब वे सारे वार्डों का राउण्ड लगाते थे, फिर दोपहर का खाना खाने से पहले, शाम के चार बजे—जब दूसरी बार अस्पताल खुलता, फिर रात का खाना खाकर उसे देखने जाते थे; और प्रायः उस समय घंटा-डेढ़ घंटा उसके पास बैठते थे। शानो जैसे हरदम उनके आगमन के लिए जीती थी। वह उन्हें देखकर निहाल हो जाती थी। दो-तीन बार उसने यह इच्छा प्रकट की कि वह डाक्टर

साहब को अपने हाथ से बनाकर खिलाना चाहती है। किन्तु डाक्टर साहब ने मना कर दिया।

"जब तक तेरा बुखार उतर नहीं जाता, मैं तेरे हाथ का बना हुआ खाना नहीं खाऊंगा।"

और शानो ने अपनी बड़ी चमकीली हंसती आंखों से डाक्टर साहब की ओर देखते हुए कहा,

"यह शर्त भी मंजूर है।"

इस घटना के डेढ़-दो सप्ताह के बाद शानो का बुखार भी उतर गया और मेरे पिताजी ने उसके हाथ का खाना मंजूर कर लिया। यद्यपि खाने का सब सामान उन्होंने अपने घर से भिजवा दिया था, किंतु पकाया शानो ने था। और शानो आज डाक्टर साहब को खाना खिलाकर बहुत प्रसन्न थी; और खाना खिलाकर कृतज्ञता से उनके पांव दबाती जाती थी। अर्दली लोग जिनका काम डाक्टर साहब के पांव दबाना ही था, डाक्टर साहब की इस मूर्खता पर अत्यंत आश्चर्यचकित हुए।

फिर शानो डाक्टर साहब के लिए स्वेटर बुनने लगी और अस्पताल में धीरे-धीरे नर्स का हाथ बटाने लगी तो नर्स भी जलकर खाक हो गई। अब तक नर्स के हृदय मे शानो के लिए सहानुभूति थी। किंतु कुछ सोचकर शानो को चोरी-छिपे जली-कटी सुनानी शुरू कर दी। अब अस्पताल का सारा स्टाफ—अर्दली, चपरासी और नर्स से लेकर कम्पाउण्डर तक—शानो के विरुद्ध हो चुका था। किंतु वह इन सबसे बेखबर डाक्टर साहब की मुस्कराहट मे मग्न दिन-प्रतिदिन स्वस्थ होती जाती थी।

यह वातावरण था जब मांजी स्वस्थ होकर लाहौर से लौटी। अभी वे शायद स्वस्थ होकर एक-दो महीने और लाहौर मे अपने रिश्तेदारों के यहां रहतीं, किन्तु मोतीराम का पत्र पाते ही उन्होने वापस आने की ठान ली और बिना पूर्व सूचना के आ धमकी। मांजी के आने से मैं और पिताजी दोनों प्रसन्न हुए। मैं तो जैसे निहाल होकर नाचने-कूदने लगा और मांजी के पैरों से लिपट गया। उन्होंने मुझे अपनी गोद में उठाकर बहुत चूमा और प्यार किया, किन्तु पिताजी से वे बड़ी कठोरता से पेश आईं जिसका उस समय पिताजी ने कोई

विचार नहीं किया। थोड़ी देर के पश्चात् वे अस्पताल चले गए और मांजी घर के काम-काज में व्यस्त हो गई। आज वे बात-बेबात पर घर के नौकरों को डांट रही थी। क्योंकि उनका खयाल था कि उनकी अनुपस्थिति में सारा घर चौपट हो गया था।

रात को सोते समय मांजी ने इधर-उधर की बातें करते हुए अचानक पूछा, "यह शांति की बच्ची कौन है ?"

"कौन, शानो ?" पिताजी ने पूछा।

"शानो होगी तुम्हारे लिए। मेरे लिए तो मत्थासड़ी शान्ति ही है। कब से इसने तुम्हारे दिल पर सिक्का जमाया है ?"

"हैं ! क्या बात करती हो काके दी मां ?"

"ठीक कहती हूं। मुझे सब पता चल गया है। रब्ब भला करे मोतीराम का। उसके घर चांद-सा बेटा हो, उसकी पत्नी की इच्छा पूरी हो। उस भले आदमी ने मुझे सब लिख दिया है।"

"मोतीराम ने ?"

"हां हां, मोतीराम ने। और मोतीराम क्या छिपाता ? क्या सारी दुनिया को मालूम नहीं है ? सारा अस्पताल तुमपर हंस रहा है। सारा इलाका तुम पर थू-थू कर रहा है। राजदरबार तक तुम्हारे करतूतो की खबर चली गई है।"

"मैंने तो कुछ नहीं किया !"

"मैंने तो कुछ नहीं किया !" माजी व्यंग्य से पिताजी की बात दोहराते हुए बोली, "इससे पहले वह जनमजली सपेरिन आई थी। उससे पहले वह खसमा-खानी करीमन आई थी। और अब यह शानो सिरखानो तो कहीं से आई है। मैं कहती हूं—मैं कहां तक तुम्हें संभालती रहूंगी। तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

"किसीका इलाज करने मे शर्म क्या है ?"

"किसीके बालो मे फूल लगाना इलाज है ? किसीके हाथ का पका खाना इलाज है ? किसीके पास डेढ-दो घंटे बैठकर गप्प लड़ाना इलाज है ? अगर यह इलाज है तो जाने इश्क-माशूकी किसको कहते हैं ?"

"काके दी मां", पिताजी गरजकर बोले, "जुबान संभालकर बात करो।"

माजी बिस्तर से उठकर बैठी और पांव पटककर बोलीं, "मैं नहीं मानूंगी, जब तक वह कलमुंही इस जगह से चली नहीं जाएगी, मेरी जुबान…।"

"जब वह अच्छी हो जाएगी, स्वयं ही यहां से चली जाएगी।"

"वह कहां जाएगी", मांजी गुस्से से बोली, "वह जाने के लिए थोड़े आई है, वह तो रहने के लिए आई है। अभी तो वह नर्स का काम सीख रही है। फिर नर्स की जगह लेगी। फिर मेरी जगह लेते उसे क्या देर लगती है? अपने खसम को तो खाकर यहां आई है। अब मेरा भाग भी खाना चाहती है। डायन! मैं उसकी टांगे चीर न डालूगी! देखो जी, मैं तुमसे साफ-साफ कहे देती हूं—उस चुड़ैल को फौरन यहा से निकाल दो, वर्ना कल से मेरा इस घर मे अन्न-जल हराम है।"

दूसरे दिन से मांजी ने उपवास आरंभ कर दिया। दिन में वे दो बार नमक मिला पानी मोतीराम के घर से मंगाकर पीती थी और बस। न कुछ खाती थी, न कुछ पीती थी और मैं रो-रोकर हलकान हुआ जाता था। बार-बार पिताजी से कहता था कि वे मांजी को मना लें पर पिताजी थे कि क्रोध से सांप की तरह फुंकारते थे और किसी तरह से शानो को अस्पताल से निकालने पर तैयार न होते थे। इस लड़ाई-झगड़े मे पहला दिन गुजर गया। दूसरा दिन गुज़र गया। तीसरा दिन गुजर गया।

चौथे दिन मांजी बहुत गिरी हुई हो गईं और कमज़ोरी महसूस करने लगीं और उनके मुंह से बात भी ठीक तरह से न निकलती थी। अभी इतनी लंबी बीमारी के बाद तो वे लाहौर से लौटी थी कि आते ही यह आफत पडी।

पिताजी क्रोध से झल्लाते हुए, बिना किसीसे बात करते हुए चले जाते। मैं पिंगपांग का बल्ला हाथ मे लेकर और गेंद लेकर बरामदे की दीवार से पिंग-पांग खेलने की कोशिश करने लगा। इतने मे एक नौकर ने मांजी से आकर कहा, "शानो आपसे मिलने के लिए आई है।"

और इससे पहले कि मांजी कुछ उत्तर देती, शानो ने सिर झुकाए हुए, आखों मे आसू लिए, काले किनारोंवाली एक मलगुजी धोती पहने, सूखे होठों और कांपते हुए हाथों से अन्दर आ गई और मांजी के चरण छूकर बोली:

"मैं तो जनम-जनम की पापिन हूं, वर्ना मेरा सुहाग क्यो उजड़ता? मैं यहां क्यों आती? तुम्हारे घर आग क्यों लगाती, पर अब तुम मुझे माफ कर दो। मैं यहां से जा रही हूं और अब यहां कभी नही आऊंगी।"

मांजी चुपचाप बिस्तर पर लेटे उसके छोटे-से घूंघट के अन्दर उसका सफेद

सुता हुआ चेहरा देखती रही। उसके बेरंग गाल, फीके होठ, डूबती हुई आखें और धुंधलाते हुए, मद्धम होते हुए नक्श—जैसे चित्र फिर से बिगड़ रहा हो।

एक हल्की उदास हरकत से शानो ने अपने पल्लू में लिपटे हुए स्वेटर को निकाला और रुंधे हुए गले से बोली, "यह मैं उनके लिए बुन रही थी जो मेरे लिए हमेशा देवता से ऊचे रहेगे। अगर तुम्हारे दिल में किसी औरत के दर्द को समझने की इच्छा पैदा हो तो इसे अपने हाथो से पूरा कर देना। बस, मैं तुमसे इतना ही मांगती हूं।"

इतना कहकर शानो ने वह अधबुना स्वेटर मां के बिस्तर पर डाल दिया और अपने होंठों को ज़ोर से भींचती हुई कमरे से बाहर चली गई। कमरे से बाहर जाते हुए अचानक वह दहलीज़ के चौखटे से टकराई और उसकी धोती का पल्लू उसके सिर से उतर गया।

उस समय मैंने देखा कि उसका सिर मुंडा हुआ है। पता नही क्यों मैं उसके मुंडे हुए सिर को देखने लगा।

शानो के जाने के पश्चात् पिताजी कुछ चुपचुप-से रहने लगे। कुछ बुझ-से गए। उसके पश्चात् कई महीने तक मैंने उनके मुह से उनका प्रिय गीत नही सुना। वही गीत जिससे मांजी को इतनी चिढ़ थी, अब उसी गीत को उनके होंठों से सुनने के लिए मांजी तरसती थी। जब भी मांजी इस विषय में कुछ कहना चाहती, पिताजी के मुंह पर ऐसी चुप्पी-सी छा जाती कि मांजी उनका चेहरा देखकर अपनी बात को दिल ही दिल मे रख लेती। ऐसा मालूम होता था जैसे शानो के विषय पर पिताजी कोई बात सुनना नही चाहते थे।

शानो के जाने के कोई छः महीने बाद पता चला कि शानो अपने गांव में तपेदिक से मर गई।

शानो का जेठ अपने किसी काम से यहां आया था और अस्पताल आकर डाक्टर साहब को बता गया था। उसी शाम डाक्टर साहब को इतने ज़ोर की कंपी-कंपी-सी चढ़ी कि रात होते-होते एक सौ पाच डिग्री बुखार हो गया। मांजी रात-भर बैठी सेवा करती रही। किन्तु बुखार दूसरे दिन भी न उतरा। बाद में मालूम हुआ कि टायफाइड था। पूरे इक्कीस दिन के बाद उतरा। किन्तु जब बुखार उतरा तो पिताजी अत्यन्त कमज़ोर हो चुके थे। वे सूखकर हड्डियों

का ढांचा रह गए और जिगर खराब हो गया था। उनकी दोनों आंखे पीली पड़ गई थी। पीलिये का तेज़ हमला था।

मांजी ने तीमारदारी में दिन-रात एक कर दिया था। ऐसा मालूम होता था जैसे वे पिताजी के पलंग से चिपककर रह गई हैं। स्वयं मांजी के स्वास्थ्य पर इस वीमारी का वहुत बुरा असर पड़ा था और वे जी-जान से पिताजी को ठीक करने की लगन मे घुली जाती थी। राजाजी डाक्टर साहब पर बहुत कृपालु थे, इसलिए उन्होने उनके इलाज के लिए दूसरे डाक्टर को भी बुलवा दिया था जो अस्पताल में काम करने के अलावा दिन-रात उनकी देखभाल करता था। नर्स भी अपना वहुत-सा समय उनकी देखभाल मे गुज़ारती थी। लाहौर से वहुत दवाइया भी मंगवाई गई थीं—खास डाक्टर साहब के लिए। परन्तु पिताजी का पीलिये का रोग बढता जा रहा था और वे दिन-ब-दिन सूखते जा रहे थे।

मांजी ने झाड़-फूक, गंडे, तावीज, जन्तर-मन्तर-तन्तर सब आजमा डाले। हकीम शमसुलुद्दीन की यूनानी दवाइयां भी खिलाई गईं। वैद्य शिवराम की शर्वत और जड़ी-बूटियां भी आजमा डाली गईं। डाक्टर गिरधारीलाल, जो मेरे पिताजी के स्थान पर आया था—उस वेचारे ने भी हर प्रकार के यत्न कर डाले, किन्तु मेरे पिताजी किसी प्रकार ठीक होने मे न आते थे और दिन-प्रति-दिन कमज़ोर होते चले जाते थे। उनकी पसलियो की हड्डियां निकल आईं। आंखें जो कभी अत्यन्त सुन्दर थीं, अब स्याह गड्ढों में गंदले पानी की तरह धुंधला गई थी और उनके पैरों पर सूजन आ चली थी।

मांजी रात-दिन सेवा मे व्यस्त रहती। शेष समय पूजा-पाठ मे व्यतीत करती। कभी-कभी पल्लू से मुंह ढापकर सिसक-सिसककर रो लेती। किन्तु मैंने उन्हें कभी पिताजी के सामने रोते नही देखा। चेहरे पर हर समय एक ज़हर-भरी मुस्कराहट रखतीं। समय पर खाना खिलाती, समय पर दवा देती, ज़रूरत के समय पाव दवाती। रात को जिस समय पिताजी करवट लेकर जागते मांजी को हर समय पांयती पर जागते हुए पाते। मांजी कव सोती थी, कव जागती थी—इसका किसीको पता न था। वस यूं मालूम होता था कि जैसे डाक्टर साहव की छाया होकर रह गई हो।

पिताजी सव कुछ देखते थे किन्तु चुप रहते थे। वही बुझा-बुझा, सुता-सा

चेहरा, पीली-पीली प्रकाशहीन आंखें, फीके, खुश्क होंठ और हाथों की उंगलियां हर समय कांपती-सी। दिन को तो वे सोते ही न थे, किन्तु रात को भी उन्हें बहुत कम नींद आती थी। वे लोगों से बहुत कम बात करते थे। प्रायः सदा छत की ओर टकटकी बाधे देखते रहते थे। ऐसा ज्ञात होता था जैसे उनके अन्दर जीने की इच्छा दब-सी गई है और उन्होंने अपने-आपको बीमारी के हवाले कर दिया है।

डाक्टर गिरधारीलाल निराश होता गया। घर मे गहरी उदासी के तारीक साये मंडराने लगे। मांजी चलते-फिरते, काम करते यूं चौकन्नी हो जाती जैसे मौत की आहट सुन रही हो। दूर रात को किसी कुत्ते के रोने की आवाज़ आती तो मांजी का दिल जोर-ज़ोर से धकधक करने लगता और वे दुपट्टे में अपनी चीखो को दबा-दबाकर इस प्रकार खामोशी से रोती कि उनका सीना दर्द और भय से फटने लगता। धाडे मार-मारकर रोने से जी हल्का होता है। पर चुपके-चुपके रोने से दिल पर वह घातक खरोच पड़ जाती है कि रूह के भीतर तक उसकी धमक सुनाई देती है।

उसी जमाने मे एक रमता जोगी एक हाथ में चिमटा और एक हाथ में त्रिशूल थामे और कन्धे से एक बड़ी पोटली लटकाए भीख मांगता हमारे बदामदे के बाहर आया। मांजी ने उसकी झोली मे बहुत-सा आटा डालकर उससे अपनी विपदा कह सुनाई। उन दिनो मांजी की दशा यह हो गई थी कि यदि उनका वश चलता तो वे वृक्षों को भी अपनी विपदा कह सुनाती। वे हरएक को पिताजी की बीमारी का हाल सुनाती थी और किसी नई दवा या जडी-बूटी का नाम सुनने के लिए व्यग्र रहती थी।

जोगी ने सब हाल सुनकर कहा, "हां बच्चा, कर देखेंगे। दो-चार जड़ी-बूटियां हमारे पास है। यदि उनमे से कोई काम आ गई तो महादेव कल्याण करेंगे।"

जोगी ने डाक्टर साहब के हाथो की उंगलियां देखी, उनके नाखून देखे, पैरों के नाखून देखे, आखें देखी, कान की लवें देखी, मस्तक देखा और फिर डाक्टर साहब को आशीर्वाद देकर बाहर चला आया और सिर हिलाकर माजी से बोला, "इसका रोग हमारे बस का नही है।"

माजी रोती-रोती हाथ जोड़कर जोगी के पांव पड़ गईं। रुंधे हुए गले से

बोलीं, "कुछ तो कीजिए जोगी महाराज।"

"नही बच्ची ! इसका रोग हमारे बस का नहीं है। इसे भगवान ही बचाएं तो बचाएं। मुझे तो इसकी आंखों में यमदूत आते दिखाई देते हैं।"

मांजी एकदम उठ खड़ी हुईं। अग्निमय दृष्टि से जोगी की ओर देखकर बोली, "यमदूत आएं तो सही, टागें चीर दूगी उनकी। मैं भी कुश्तरानी हूं। मैंने भी प्रण किया है। मेरे जीते जी मृत्यु उनको हाथ नही लगा सकती।"

"तुम मृत्यु को कैसे रोक सकोगी बच्ची ?" जोगी ने पूछा।

"उनके मरने से पहले मैं अपनी जान दे दूगी। पर मेरे जीते जी मृत्यु उनको न छू सकेगी। ऐसा मैंने प्रण किया है।"

मांजी का मुख क्रोध की तीव्रता और सकल्प की दृढ़ता से लाल-भभूका हो रहा था। मैंने मांजी को ऐसे तेज में कभी नही देखा था।

जोगी उन्हें देखकर मुस्कराया और बोला, "बच्ची, मैं तेरा संकल्प देखना चाहता था। वैसे इस रोग का एक इलाज है। किन्तु वह इतना कठिन है कि उसके लिए बडे धैर्य और कठोर संकल्प की आवश्यकता है।"

"आप बताइए तो सही महाराज !" माजी बड़ी दृढ़ता से बोली, "मैं उस इलाज को पूरा करने मे सारे जेवर बेच डालूगी और अपनी जान की बाजी लगा दूंगी।"

"उस इलाज को बरतने में एक पैसा भी खर्च न होगा। हां, किन्तु बहुत कठिन कार्य है। पर तुम्हारा संकल्प देखकर, तुम्हें बताए देता हूं। जगलो मे एक बेल होती है, उसे फफानू की बेल कहते हैं। कभी-कभी यह खेतों मे भी मिल जाती है, पर जंगलो मे आम होती है। सब किसान लोग उसे जानते हैं। इस बेल में एक फल लगता है, उसे भी फफानू कहते हैं। यह फल टमाटर से छोटा होता है, पर आकार-प्रकार मे ककड़ी से बहुत मिलता है। उसका स्वाद बहुत मीठा और तुर्श होता है।"

"हां-हां, मैंने फफानू अपने खेतो में देखा है," मांजी फिर आशान्वित होकर बोली, "बच्चे उसे बडे स्वाद से खाते है।"

"बस वही है," जोगी बोला, "किन्तु आजकल खेतो मे नही मिलेगा और मिलेगा तो जंगलो की उन ढलानों पर जहा धूप नहीं जा सकती, क्योंकि यह बहुत ठंडा फल है। अब तुम ऐसा करो कि इस इलाज को किसी दूसरे पर मत

छोड़ो। इसके लिए तुम्हें स्वयं सवेरे उठकर जंगल जाना होगा और फ़फानू के फलो की ओस, जो सुवह-सवेरे उनपर पटी होती है, इकट्ठा करके एक वर्तन मे जमा करना होगा और फ़फानू भी अलग से जमा करने होगे। वह ओस इकट्ठी करके उसे सूर्य चढने से पहले अपने पति को पिला दो। फिर उसके आधे घंटे वाद उन फ़फानुओ का रस निकालकर और वीज अलग करके, उसे पिला दो। किन्तु यह सव काम सूर्य चढ़ने से पहले होने चाहिए। यदि चालीस दिन तक तुम यह दवा खिलाओगी तो शम्भू महाराज की कृपा से तुम्हारे स्वामी अच्छे हो जाएंगे।"

मां ने जोगी के पांव छुए और उन्हे दस रुपये का नोट भेंट किया। किन्तु जोगी ने लेने से इन्कार कर दिया।

"आज के दो समय की रोटी तुम्हारे घर से मिल गई। वस इससे अधिक लेने की आज्ञा नहीं है। अव हम चलते हैं।"

इतना कहकर जोगी चिमटा वजाता हुआ, गाता हुआ हमारे यहां से विदा हो गया।

दूसरे दिन मां ने अपने एक नौकर किरपाराम को अपने साथ लिया और दडीनो के जगल की ओर चल दी। अभी पौ न फटी थी कि वे किरपाराम को लेकर घर से विदा हो गईं। अभी ठीक से उजाला न हुआ था कि वे फफानू के फल और फफानू की ओस एक कांसी के ढक्नेदार वर्तन में इकट्ठी करके ले आईं। किन्तु वे इतनी वुद्धिमान अवश्य थी कि हर दवा से पहले डाक्टर गिरधारीलाल की राय अवश्य ले लेती।

अतः उन्होने डाक्टर गिरधारीलाल को शीघ्र वुला भेजा। वह वेचारा अभी सो रहा था, पर मांजी से सूचना पाते ही फौरन चला आया। अचानक नीद से उठने के कारण कुछ कड़ुवा भी हो रहा था। किन्तु जव उसने फफानू देखे तो एकदम भडक गया। वोला, "यह तो वही जलील फफानू हैं, जिन्हे पहाड़ी वच्चे वकरियां चराते हुए प्रतिदिन जगल से तोडकर खाया करते हैं।"

"यह तो मैं भी जानती हूं," मांजी वड़े आत्मविश्वास से वोली, "पर आपसे केवल यह पूछना है कि इनका रस किसी प्रकार की हानि तो नहीं करेगा।"

"हानि नहीं करेगा तो लाभ भी क्या करेगा?" गिरधारीलाल ने जलकर कहा।

"वह तो पिलाने से मालूम होगा।"

"जैसी आपकी मर्ज़ी।"

किन्तु गिरधारीलाल ने पिताजी की हालत से निराश होकर सब कुछ मांजी पर छोड़ दिया था। इलाज तो वह अब भी करता था और दवा उसकी अब भी दी जाती थी। किन्तु उसके हृदय मे अब विश्वास नही था कि पिताजी अब अच्छे होगे।

माजी ने ओस के दो घूट मेरे पिताजी को पिला दिए। फिर आधे घटे के पश्चात फफानू का रस भी बीज निकालकर पिला दिया। यह सब काम हो जाने के वाद, कही एक घंटे के वाद सूरज निकला। मां ने बड़ी निश्चिन्तता अनुभव की।

बंगले के पिछवाड़े मे रेलिंग के समीप के एक ऊंचे पत्थर पर किरपाराम बैठा हुआ एक सुए से अपने कांटे निकाल रहा था और कोसता जाता था, "कैसा कांटेदार जंगल है। कैसी खतरनाक ढलानें हैं—जहा फफानू मिलते हैं। किसी सीधी-सपाट जगह पर तो मिलते ही नही। किसी खोह के पास, किसी ढलवान पर, किसी खड्ड मे, भयानक चट्टानो के सायों मे—जहा बकरी भी न पहुंच सके, वहां यह बेल उगती है। मेरे तो पांव छिल गए और पायजामा भी फट गया। और सुबह कैसी कड़ाके की सर्दी थी। कम्बल ओढकर गया था। फिर भी रास्ते-भर दांत बजते रहे। तेरी मां तो शेरनी है। शेरनी को जंगल मे किसीका डर नही। किसी चट्टान से फिसलकर खड्ड में गिरने का डर नही।

"जहा मैं नही पहुच सकता था, वहां यह किसी न किसी तरह गिरते-पड़ते पहुंच जाती थी। दुहाई है! मैं तो चालीस दिन एकसाथ कैसे जाऊंगा? तेरी मा के सिर तो जिन्न सवार है। मुझसे यह काम न होगा। मैं तो नौकरी छोड़ दूगा।"

वह इसी प्रकार बकता-झकता रहा। किन्तु इसके वाद भी दूसरे दिन गया। तीसरे दिन गया। चौथे दिन गया। पांचवे दिन हिम्मत हार गया। माजी उस दिन जगतसिंह को अपने साथ ले गईं। पांच दिन तक वह भी साथ जाता रहा। अन्त में वह भी हार गया। ग्यारहवें दिन मांजी फिरोज़ अर्दली को साथ ले गईं।

इससे पहले ऐसा नियम था कि मांजी पौ फटने से पहले घर से चली जाती

थी नौकर को साथ लेकर; और सूरज निकलने से एक घंटा या आध घंटा पहले आ जाती। बहरहाल उन्होने अपनी दिनचर्या में कभी नागा न की थी और वे प्रतिदिन सूरज निकलने से पहले फफानू की ओस और उसका रस पिताजी को पिला देती थी।

कई बार नौकरो ने उनसे कहा, "मांजी, आपके जाने की क्या जरूरत है। हम खुद फफानू और उसकी ओस जंगल से इकट्ठा कर लाएंगे।"

तो मांजी सिर हिलाकर उत्तर देती, "और यदि किसी दिन तुम न ला सके या किसी दिन तुम सुस्ती कर गए और फफानू की ओस के बजाय नदी के पानी की दो घूंट ले आए तो मैं क्या करूंगी ? ना भई, इस मामले मे मैं किसी पर विश्वास न करूंगी।"

ग्यारहवे दिन मांजी जंगल से देर तक न लौटी न फिरोज़ आया। देर तक लोग उनकी प्रतीक्षा करते रहे। फिर सूरज निकल आया। फिर सूरज पहाड़ों से गज-भर ऊंचा हो गया। माजी फिर भी न आईं। पिताजी ने दो-एक बार द्वार की ओर देखा। फिर मौन होकर दृष्टि छत पर लगा दी।

जब सूरज दो गज ऊंचा हो गया और नौकरों के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगी और वे आपस मे घुर-पुर करने लगे और पुलिस को सूचना देने की सोचने लगे; तो हम सबने बरामदे से खड़े होकर दडीनो के जंगल की ओर देखते हुए बरनकियो के झाड़ के पीछे की घाटी से फिरोज को दूर से आते हुए देखा। मांजी को उसने कन्धों पर लाद रखा था।

बहुत-से लोग भागे-भागे फिरोज़ की ओर दौडे। मैं भी रोता हुआ दौड़ा। तेज़-तेज़ चलते हुए बूढे फिरोज की कमर दोहरी हो गई थी और दम टूट रहा था। मजीद और किरपे ने जाकर फिरोज का बोझ हल्का किया और माजी को उठाकर घर लाए। मैंने देखा कि उनकी साडी स्थान-स्थान से फटी हुई थी और हाथो और पावो से रक्त बह रहा था। उनकी आंखें बन्द थीं और चेहरा एक ओर को ढुलका हुआ था। मैं जोर-ज़ोर से रोने लगा।

मजीद और किरपा ने माजी को पिताजी के सामने दूसरे पलंग पर लिटा दिया। मेरे ज़ोर-जोर से रोने की आवाजें सुनकर पिताजी ने छत से दृष्टि हटा ली और बोले, "क्या है ?"

बूढ़े फिरोज ने कहा, "मांजी खड्ड मे गिर गईं साहब। बड़ी खतरनाक

ढलवान थी—फिसलवां और गहरी और अंधेरी और दूर नीचे जाकर एक फफानू की बेल पर चार-छः फफानू तो लगे हुए थे और आज जंगल से फफानू बहुत कम मिले थे। मैंने माजी को बहुत समझाया, पर वे नही मानी। मैं, सरकार, अब बहुत बूढा हू। इतने गहरे खड्ड मे जाने की हिम्मत नही कर सकता। मगर ये मेरी बात नही मानी और खड्ड में उतरने लगी। उतरते-उतरते उनका पांव जो फिसला, साहब तो बस··· समझिए जान किसी तरह बच गई। मगर चोटें बहुत आई है साहब !"

पिताजी किसी न किसी प्रकार अपने बिस्तर पर से उठे और मेरी मां के पलग के समीप पहुचे। मांजी पलंग पर बेसुध पडी थीं। उलझे-उलझे नीचे घिसटे बाल, जिनमें न तेल न कंघी। माये पर लहू की पपड़ियां। मैले-मैले गाल, दु.ख से धुंधलाए हुए। पतली सूखी बाहो पर चोटें, नील और खराशें, टागो से लहू बहता हुआ और पांवो की बिवाइया फटी हुईं। वे ऐसी कमज़ोर, शक्तिहीन और बेजान-सी लग रही थीं कि पत्थर से पत्थर दिल भी उन्हे देखता तो पानी हो जाता।

पिताजी ने धीरे से कहा, "जानकी, जानकी !"

मांजी बेसुध पड़ी थी।

अचानक भर्राई हुई आवाज़ में एक चीख मारकर पिताजी उस बेसुध मूर्ति से लिपट गए। "मैंने तेरे साथ बडा अत्याचार किया है, जानकी !··· मुझे क्षमा कर दे, मुझे क्षमा कर दे। मैं सौगन्ध खाता हूं, अब कभी नही···अब कभी नही···।"

मांजी ने अपने स्वामी की गोद मे अपनी आंखें खोली। अपने कांपते हुए हाथ की उंगलियों से मेरे पिताजी की कई दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी को छूकर कहने लगी :

"गलती तो मुझसे हुई। क्षमा तो मुझे मागनी चाहिए। मैंने समझा तुम शानो को प्रेम दे रहे हो। हालांकि उसे तुम केवल जीवन दे रहे थे, पर मुझे बहुत देर के बाद अहसास हुआ। और उस समय वह मर चुकी थी। उसकी मृत्यु और तुम्हारे दु.ख की मैं उत्तरदायी हूं। किन्तु जो पापी होते हैं वही तो क्षमा मागते हैं··· ।"

माजी अपने आंसुओं में शरमाईं। सब नौकर सिर झुकाकर बाहर चले गए। पिताजी ने एक हाथ से मुझे और दूसरे हाथ से मेरी मां को गले लगाते

हुए कहा, "उन दिनों को भूल जा। अब कभी नहीं··· बस···· अब कभी भूल न होगी। अब तक मैं कभी इतना तेरा न हुआ था जितना आज से हो गया हूं। बस, अब तो कुछ बाकी नही रहा।"

"कुछ बाकी न रहा···", माजी ने प्रसन्नता और लज्जा से पिताजी के सीने मे सिर छुपा लिया और रोने लगी। पिताजी भी रोने लगे। मैं भी रोने लगा। क्योंकि हम हिन्दुस्तानी एक रोनेवाली जाति हैं। हमारी आंखों में आसू बहुत होते हैं और हर स्थान पर और हर समय रो सकते है। परन्तु दूसरे लोग प्रायः इस हमारी कमजोरी का उपहास करके गलत अनुमान लगा लेते हैं। किन्तु हम क्या करें ? अभी हमारे हृदय की भावना और हमारी आखो का पानी नही मरा है। निस्सन्देह जब हम बहुत अधिक सभ्य हो जाएंगे तो आसुओं से घृणा किया करेंगे।

दोपहर के समय मांजी अपने पलंग पर बैठी कुछ काढ़ रही थी। गिरधारीलाल एक कुर्सी पर पिताजी के पलंग के पास बैठे थे और पिताजी पलग पर बडे-बड़े तकिये लगाए अधलेटे-से बैठे थे और धीरे-धीरे गुनगुना रहे थे, "फटी जब कान इस बन में, फटी जब··· ।"

गिरधारीलाल ने पूछा, "अब कौन-सी दवा शुरू करें ?"

पिताजी हंसकर बोले, "अब अगर नदी का पानी भी पिला दोगे तो अच्छा हो जाऊंगा।"

उनके चेहरे पर गहरी आशा की झलक थी।

डाक्टर गिरधारीलाल आश्चर्य से मेरे पिताजी की ओर देखने लगे। मेरी मां सिर झुकाए कुछ काढने मे व्यस्त थी।

"यह क्या है तुम्हारे हाथ मे ?" पिताजी ने मांजी से पूछा।

मांजी अपने पलंग से उठी और पिताजी को अपने हाथ में लपेटी हुई ऊन दिखाते हुए बोली, "सोचती हूं वह शानोवाला स्वेटर अब पूरा कर दू।"

धीरे से पिताजी ने उस अधबुने स्वेटर को अपने हाथ में लिया। धीरे से उन्होंने उसपर अपनी उंगलिया फेरी और बोले, "हां, अब उसे पूरा कर डालो।"

किन्तु उनके स्वर मे कोई आश्चर्य और दुःख न था। वह स्वर ऐसा था जैसे किसी सुन्दर स्मृति का होता है।

भादू

दो पत्नियोवाले भादू को जूनियर अफसरों के क्षेत्र मे भी पसन्द नही किया जाता था। सरकारी वेतन पानेवालों की सूची मे उसका नाम बहादुर अली खां था, किन्तु सब लोग उसे भादू ही कहते थे, क्योकि कल तक वह इस इलाके के बुड्ढो और बुजर्गों की चिलमे भरा करता था। लगभग नंगा घूमा करता था। कभी यहा खाना खा लिया तो कभी वहा खा लिया। कभी इसके यहां पड़के सो गया तो कभी उसके यहां। किन्तु भादू पढ़ने-लिखने में बहुत होशियार था, इसलिए मेरे पिताजी ने राजाजी से कह-सुनकर उसकी छात्रवृत्ति नियत करा दी थी और वह उस छात्रवृत्ति के जोर पर एन्ट्रेंस पास करके लाहौर से वापस घर आया था। फिर राजा साहब ने किसी पागलपन के दौरे मे और अपने हिन्दू अफसरो के स्पष्ट प्रतिरोध के बावजूद उसे प्राइमरी स्कूल का हैडमास्टर नियत कर दिया था। कल का भादू आज बहादुर अली खां बन बैठा था और जूनियर अफसरों से टक्कर लेने के लिए तैयार था, क्योकि लाहौर से वह न केवल जे० वी० की सनद लेकर आया था बल्कि मुस्लिम लीगी विचार भी लेकर आया था। बहुत-से लोगों को इन दोनो बातो पर एतराज था, पर उसके विचारो से सब लोग चिढ़ते थे। मेरे पिताजी को भी उसकी बाते सख्त नापसन्द थी और अब वे अपनी गलती महसूस करते थे कि क्यो उन्होने उसके लिए छात्रवृत्ति की राजाजी से सिफारिश की।

किन्तु अब क्या हो सकता था? बहादुर अब प्राइमरी स्कूल का हैडमास्टर था और अपने इलाके का पहला मुसलमान नवयुवक था जो एन्ट्रेंस और जे० वी० करके आया था। वापस आते ही उसकी शादी चौधरी दीन मुहम्मद मरहूम की लड़की गुलनार से हो गई। गुलनार एक विधवा थी पर उसके सौंदर्य और

लावण्य की चर्चा चारों तरफ थी। वह हमारे इलाके की एक स्वतन्त्र वेवा समझी जाती थी, क्योंकि चौधरी दीन मुहम्मद के यहां कोई पुत्र न था। वह मरते समय अपनी सारी ज़मीन, बाग और दो घर्राट और एक घर—अपनी दोनों बच्चियों के नाम लिख गया था। गुलनार की छोटी बहिन लैला भी सोलह वर्ष की हो चुकी और धीरे-धीरे उसके सौंदर्य की प्रसिद्धि भी सरकारी क्षेत्रों में फैल गई थी। बहुत-से लोग गुलनार से शादी करने के इच्छुक थे, पर गुलनार ने बाईस वर्षीय नवयुवक बहादुर को अपना शौहर चुन लिया और दो वर्ष के बाद स्वयं अपनी मर्ज़ी से अपनी छोटी बहिन लैला का निकाह भी उससे कर दिया। और अब कल का अनाथ भादू बहादुर अली खां बन बैठा। वह प्राइमरी स्कूल का हैड मास्टर था।

दो सुन्दर और जवान पत्नियों का एकछत्र स्वामी था। अब वह ज़मीन-वाला था, घर-घर्राटवाला था और इलाके का सम्माननीय और प्रसिद्ध शहरी था। क्या यह बात जूनियर अफसरों को पागल बना देने के लिए पर्याप्त न थी?

यदि यह बात जूनियर अफसरों तक सीमित रहती तो कोई हर्ज़ की बात न थी, पर मुंहज़ोर बहादुर की हिम्मत यहा तक बढ़ गई कि एक दिन उसने मेरे पिताजी से टक्कर ले ली और लड़ने-मरने के लिए तैयार हो गया।

वह घटना यों हुई कि मेरी मां के ज़िद करने पर कि बच्चा बड़ा हो गया है, इसे स्कूल भेजना चाहिए—मेरे पिताजी ने बहादुर को स्कूल के बाद अपने यहां बंगले पर बुला भेजा। मैं तो दिन-भर रोता रहा था, क्योंकि मैं स्कूल जाना नही चाहता था। मुझे बाग में खेलना, वृक्षो पर चढ़ना, नदी में तैरना, जंगली पक्षियों के घोसले नोचना अधिक पसन्द था। स्कूल मुझे जेलखाने के समान दिखाई देता था और जेल जाना कोई पसन्द नहीं करता। किन्तु जब पिताजी ने मांजी की ज़िद पर बहादुर को बुला भेजा तो मैं भी उसे देखने के लिए बाहर बरामदे मे निकल आया। इससे पहले मैंने दूर-दूर ही से बहादुर को देखा था और जो कुछ देखा था, वह मुझे पसन्द न था।

बहादुर के गाल बाहर को निकले हुए थे और जबडे अन्दर को धंसे हुए थे और उसकी घमण्डी ठोड़ी लोहे के फल की तरह हवा मे लहराती थी। उसका रंग भी लोहे का सा था। उसके बड़े-बड़े हाथ-पांव फौलादी और बड़ी-बड़ी

हड्डियोंवाले दिखाई देते थे और काले-काले बालों से भरे हुए थे, और वह सदैव एक विचित्र प्रकार से एक कन्धा उचकाकर हंसती हुई निगाहों से लोगो को लगातार सन्देह-भरी दृष्टि से देखता हुआ चलता था।

इस समय भी वह उसी प्रकार चलता हुआ आया। मेरे पिताजी ने खड़े होकर और आगे बढ़कर उससे भेंट की। बैठने के लिए उसे आराम कुर्सी पेश की, जिसपर वह फौरन बैठ गया। मैं अपने बाप की आरामकुर्सी की हत्थी से चिपका हुआ था और जब मेरे बाप ने मुझे कहा, "बेटा, यह तुम्हारे हैडमास्टर हैं। इन्हें सलाम करो।" तो मैं सलाम करने के बजाय एक फीकी-सी मुस्कराहट के साथ उसे मुड-मुडकर देखने लगा। मेरे सारे शरीर से पसीना छूट रहा था और मैंने अपने पिताजी की आरामकुर्सी की हत्थी को और भी शक्ति से पकड़ लिया, जैसे अब वही मेरा एक अन्तिम सहारा हो।

फिर जब पिताजी ने मुझसे ज़रा कठोरता से कहा, "बेटा, इन्हें सलाम करो।" तो मैंने जल्दी से हाथ को माथे तक ले जाकर उसे सलाम किया और जल्दी से अन्दर भागकर मां के पास चला गया और रोने लगा।

"नही, नहीं, मैं स्कूल नही जाऊंगा। मैं हरगिज इस काले मास्टर से नही पढ़ूंगा।"

मेरी मां तरह-तरह से मुझे सात्वना देती रहीं, पुचकारतीं और प्यार करती और मैं अपने गन्दे हाथो से गरम आंसू पोंछता रहा और धीरे-धीरे रोता रहा। माजी ने चाय तैयार कराके बाहर भिजवाई। इतने मेंउन्हें बरामदे में ज़ोर-ज़ोर की आवाजें सुनाई देने लगी और वे जल्दी से सब काम छोडकर भागी। बाहर बरामदे मे खुलनेवाले दरवाज़े की ओट मे होकर सुनने लगी और मैं उनके पीछे खड़ा होकर सुनने लगा।

मेरे पिताजी कह रहे थे, "मुझे मालूम है, तुम मुसलमान लड़कों को ज़्यादा नम्बर देते हो और उन्हें प्रथम बना देते हो ताकि वे सरकारी छात्र-वृत्तियां प्राप्त कर सकें। तुम मुसलमान लड़को से पक्षपात का व्यवहार करते हो।"

"यह झूठ है। मुसलमान लड़के ज़्यादा मेहनत करते है, इसलिए अव्वल नम्बर पर पास होते हैं।"

"पहले क्यो नही होते थे?" मेरे पिताजी ने पूछा।

"पहले वे पढते कहां थे। सारे स्कूल हिन्दुओं के लड़को से भरे हुए होते थे। पहला हैडमास्टर कट्टर हिन्दू था। जान-बूझकर मुसलमान लड़को को फेल करता था।"

"यह गलत है, भ्रमपूर्ण है। तुम लाहौर से जो मुस्लिम लीगी विचार लेकर आए हो, उन्होने तुम्हारे दिमाग को खराब कर दिया है।"

बहादुर बोला, "डाक्टर साहब, मेरा दिमाग मुस्लिम लीग ने खराब नहीं किया है, हिन्दुओं के जुल्म ने किया है। आप देखते नही है, यहां के इलाके की पिच्यानवे फीसदी आबादी मुसलमानों की है, लेकिन राजा हिन्दू है, अफसर हिन्दू हैं; मशीरमाल से लेकर पटवारी तक सब हिन्दू हैं। सारी रियासत मे एक भी डाक्टर मुसलमान नहीं है।"

मेरे पिताजी क्रोध से चमककर बोले, "अब मेरी रोज़ी भी तुम्हारी नज़रों मे खटकने लगी?"

"रोज़ी की बात नही, यह उसूल की बात है," बहादुर अली ने एक क्षण के लिए आंखें झुकाकर कहा।

"हमारा राजा तुम्हारी नज़रों में खटकता है, हालांकि उसीने तुम्हें छात्र-वृत्ति देकर लाहौर भेजा था।"

"दिया तो मुझपर कोई एहसान नही किया। यह उसका फर्ज था।"

"हिन्दू राजा तुम्हें कांटे की तरह चुभता है, पर हैदराबाद के बादशाह की तुम दिन-रात प्रशंसा करते हो। वहां के हिन्दुओं पर जो अत्याचार ढाए जाते हैं, उनका विरोध न तुम करते हो न तुम्हारे अखबार!"

"हमारा बादशाह इन्साफ का पुतला है। उसके खिलाफ जो भी बयान अख़बारो मे छपते हैं, वे सब फिरकापरस्त हिन्दुओ के मनघड़न्त होते है। उनका विरोध करना हमारा फर्ज है।"

"विरोध! विरोध! यह विरोध क्या बला है। लाहौर से बहुत उर्दू पढ़कर आए हो! मैं कहता हूं—तुम्हारी यह मुस्लिम लीगवाली पालिसी हमारी रियासत मे नही चलेगी। यदि किसी दिन राजा साहब को तुम्हारी करतूतो का पता चल गया तो कान से पकड़कर निकाल दिए जाओगे।"

"मैं जाऊंगा तो मेरी जगह कोई दूसरा आ जाएगा। मगर मैं अपनी कौम को धोखा न दूंगा। बहुत जुल्म कर लिया तुम लोगो ने। अब तुम्हारा खात्मा

नज़दीक है।"

मेरे पिताजी क्रोध से थरथर कांपने लगे। आरामकुर्सी से उठ खड़े हुए और चिल्लाकर बोले, "बदमाश! जिस थाली मे खाते हो उसीमे छेद करते हो!"

"जिस थाली का तुम ज़िक्र करते हो, उस थाली में छेद ही छेद है और छेदों के सिवा कभी कोई रोटी का टुकड़ा उसमें न था।"

"नमक-हराम मुस्लिम लीगी!"

"सुअर आर्यसमाजी!"

अचानक बहादुर भी आरामकुर्सी से उठ खड़ा हुआ और दोनों हाथापाई करने लगे। मेरे पिताजी बहुत तगडे थे। किन्तु बहादुर अली भी कुछ कम तगडा न था, बल्कि उम्र मे मेरे पिताजी से बहुत कम भी था। अधिक जवान और शक्तिशाली था। इसलिए वह एक की बजाय मेरे बाप को दो घूंसे देता था। मेरी मां चीखने-चिल्लाने लगी।

इतने मे घर के दो-तीन नौकर दौडे-दौड़े आए और सबने मिलकर इन दोनो को पृथक् किया।

दोनो क्रोध और घृणा से कांप रहे थे और एक-दूसरे की ओर इस प्रकार देख रहे थे जैसे कच्चा ही खा जाएगे।

"निकल जाओ मेरे घर से!" मेरे पिताजी ने क्रोध से दोनों हाथ उठाकर कहा।

बहादुर ने दांत किटकिटाए। अब उसके समान मेरे पिताजी के अतिरिक्त दो-तीन हट्टे-कट्टे नौकर भी खडे थे। इस लड़ाई का जो परिणाम अब होगा, यह वह भी जानता था। किन्तु उसका क्रोध अभी ठडा न हुआ था। मारे क्रोध के उसके मुंह से झाग निकल रहा था। उसने इधर-उधर किसी डडे या सोटी की तलाश मे नजर दौड़ाई और जब उसे कुछ न मिला तो उसने चाय के सेट को दोनो हाथों में उठा लिया और क्रोध मे उसे फर्श पर दे मारा। एक जोर के झनाके से सारी प्यालिया चूर-चूर हो गईं और बहादुर दूसरे क्षण बरामदे से बाहर निकल गया।

मेरे पिताजी बड़े क्रोधी प्रकृति के थे और हठीले थे, किन्तु जितने क्रोधी थे उतने ही शीघ्र उनका क्रोध उतर भी जाता था। इस घटना के फौरन बाद ही

वे अस्पताल चले गए। दोपहर का खाना खाने के लिए भी नीचे नही उतरे। मना करवा दिया था। मां क्रोध से जलती-भुनती रही और बहादुर मुसल्ले को गालियां देती रही।

शाम को जव पिताजी नीचे वंगले में आए तो मां दुःख और क्रोव से लगभग रुआंसी होकर वोली, "इसी दिन के लिए कहती थी—सांप को पाला नही करते!"

मेरे पिताजी ने वुझे हुए स्वर मे कहा, "मैंने एक सांप नही, एक अनाथ समझकर उसकी सहायता की थी। मुझे क्या मालूम था कि वह मुझसे लड़ने-मरने पर उतारू हो जाएगा। मैंने उसके भले के लिए ही कहा था।"

"यह मुसलमान किसीके मित्र नहीं होते। तुम राजा साहव से कहकर उसे निकलवा दो फौरन।"

"हूं...नही, किसीकी रोजी पर लात मारना अच्छा नही होता।"

"तुम्हारी इस दया से तो मैं तंग हूं" मां ने पैर पटककर कहा, "पर यह वताओ कि अव तुम करोगे क्या?"

"कुछ भी करूंगा, पर मैं अपने वच्चे को उस स्कूल में नही भेजूंगा। उस आदमी के हृदय मे वहुत अधिक घृणा है। थोड़ी-सी घृणा तो शायद हर एक के हृदय मे होती होगी। किन्तु इतनी गहरी घृणा...!"

मेरे पिताजी के सारे शरीर में एक झुरझुरी-सी आई। वे एकदम मौन होकर कुछ सोचने लगे।

"फिर वही तुम्हारी फिलासफरों की-सी वाते।" मेरी मां ने निराश होकर कहा और वहां से अन्दर चली गई।

मेरी मां के अन्दर जाने के तत्काल वाद ही ख्वाजा अलाउद्दीन पधारे। ख्वाजा अलाउद्दीन सफेद दाढ़ीवाले, गोरी-चिट्टी, चिकनी रंगतवाले वृद्ध थे। गिलहरी के समान उनके दांत भी अत्यंत छोटे-छोटे और सफेद थे। उनकी आंखें भी वड़ी छोटी-छोटी और अत्यन्त चमकती हुई प्रतीत होती थी। और हर समय वेचैन-सी रहती थी। ख्वाजा अलाउद्दीन राजाजी के मुंह-चढे मुसाहिव थे। अत्यंत खुशामदी और मेल-जोल-पसन्द आदमी थे। वड़े कोमल ढंग से और सुन्दर स्वर में मीठी-मीठी वातें किया करते थे। जव वे आते, मुझे सदा गोद में

उठा लेते, प्यार करते, जेब से एक रुपया निकालकर भेंट करते।

मुझे ख्वाजाजी अत्यंत पसंद थे। इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् ख्वाजाजी बोले, "यदि आप कहे तो राजाजी के कान तक···।"

किन्तु मेरे पिताजी ने उनका वाक्य पूरा नहीं होने दिया। जल्दी से बोले, "जाने दीजिए। गलती मेरी भी थी। मैंने उसके युवापन का लिहाज नही किया। उसे बहुत कुछ सख्त कहा। गालियां तक दे डाली।"

"बुजुर्गों का इतना भी हक अगर छोटे न मानें तो बदतमीज कहलाएंगे", ख्वाजाजी बोले, "आपके एक इशारे की देर···अगर···।"

'नही, नही", पिताजी फिर बात काटकर बोले।

"हैरत है! दुनिया को क्या होता जा रहा है!" ख्वाजाजी बड़े बुझे हुए स्वर में बोले, "हमारे राजाजी तो धर्मराज हैं। शेर-बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं उनके राज मे! वे तो हिन्दू-मुसलमानो, दोनो, को एक आंख से देखते है। उनकी एक आंख अगर हिन्दू है तो दूसरी मुसलमान।"

"बेशक, बेशक!"

ख्वाजाजी ने बात का सिलसिला चालू रखते हुए कहा, "पिछले साल अकाल के मौके पर इन्होने एक चौथाई लगान माफ कर दिया था और दो हजार गरीब मुसलमानो को खाना खिलाया था; और यहां से बडे शहर तक कच्ची सड़क बनाने के लिए सैकड़ो किसानो को छ: महीने के लिए सरकारी खर्च से काम पर लगाया था।"

"बेशक, बेशक।"

"और फिर आप जैसे जागे हुए इंसान, रोशनख्याल, और खुले दिल की हस्ती से वह नालायक उलझ पड़ा! हैरत है, आप कैसे खामोश बैठे हैं? मैं आपकी जगह होता तो उसे जिन्दा कब्र मे गड़वा देता। उस नीच की यह मजाल कि आपको हाथ लगाए। उसका तो हाथ कटवा देना चाहिए। सच कहता हूं, डाक्टर साहब! बखुदा आपकी तारीफ नही की जा सकती। मैंने अपनी सत्तर साल की जिन्दगी मे कई निहायत ही प्यारे और मोहब्बत करनेवाले हिंदू देखे, लेकिन आप जैसा शरीफ और इंसाफवाला अफसर मैंने आज तक नही देखा।"

"जर्रानवाजी है आपकी!" मेरे पिताजी प्रसन्न होकर बोले।

"ऊपर खजरे मे चलेंगे?" ख्वाजा साहब ने आख मारकर कहा, "राजा साहब ने डिम्पल स्काच की एक बोतल इनायत की थी। मैंने सोचा, इस ईर्ष्यालु

जमाने में आप ही एक ऐसे यार आदमी हैं जिसके साथ बैठकर दो घड़ी गम-गलत किया जा सकता है।"

"चलिए, चलिए।" मेरे पिताजी तत्काल आरामकुर्सी पर से उठ खडे हुए और एक नौकर को आवाज़ दी, "अरे हमीदे, दो मुर्गे अच्छी तरह से भुनवाकर ऊपर पहुंचा दे।"

फिर वे ख्वाजा अलाउद्दीन की बांहों में बांहे डाले गाते हुए ऊपर चले गए :

"फटी जब कान इस बन मे।"

"सुअर का कलेजा पकाकर ले जा इन दोनों के लिए", मेरी मां ने पिताजी के जाते ही जलकर हमीदे से कहा, "कम्बख्त ! इस घर में जो आता है, सवा सत्यानाश आता है।"

हमीदा बड़ा मुंहफट और लाड़ला नौकर था। वह सिर खुजाते-खुजाते बोला, "मांजी, सुअर का कलेजा आप भी तो खाएंगी न ?"

"हाय वे उरपुर जानियां !"

मेरी मां सोटी लेकर उसे मारने को दौड़ी। हमीदा हंसता हुआ वहां से भाग गया।

इस सारे किस्से में यदि कोई अत्यन्त प्रसन्न था तो वह मैं था। इस लड़ाई के कारण अब मुझे स्कूल नहीं जाना पड़ेगा। इसलिए मैं अत्यन्त प्रसन्न था।

जब मैंने तारां को यह किस्सा सुनाया तो वह भी बहुत प्रसन्न हुई। उस ज़माने में हमारे इलाके मे लड़कियों का कोई स्कूल न था और चूंकि वह स्कूल नही जा सकती थी, इसलिए वह मेरे स्कूल न जाने पर भी बहुत प्रसन्न हुई। उसका प्रतिदिन का साथी, उसके साथ छुपकर खेलनेवाला उससे छिन जाता यदि मैं स्कूल जाता। इसलिए वह बेहद खुश थी। उसने अपनी जेब टटोलकर मुझे मक्की का आधा भुट्टा खाने को दिया। यह मक्की का भुट्टा पिछले साल की फसल का था और पिछले साल आग पर भूना गया था; और पिछले साल से तारां के घर की भड़ौली मे अपने दूसरे साथियों समेत एक रस्सी की डोरी मे बंधा हुआ था।

"बेहद कुरकुरा और मीठा था।" मैंने मक्की का भुट्टा खाते हुए तारां पर अपना ज्ञान बघारते हुए कहा था।

"तुम्हें मालूम है—हैदराबाद का बादशाह मुसलमान है ?"

"झूठ !" तारां मेरे हाथ से मक्की का भुट्टा छीनते हुए बोली, "राजा तो हिन्दू होते हैं और मुसलमान जो होते है, वे सब गरीब होते हैं।"

"नहीं। वह मुसलमान है और न्याय का पुतला है।"

"गलत। पुतला तो मिट्टी का होता है, पगले !"

फिर तारां की बडी-बड़ी आंखें प्रसन्नता से मेरी ओर देखने लगी। अचानक तारां बोली, "यह न्याय क्या होता है ?"

"यह एक तरह की मिट्टी होती है", मैंने उसके हाथ से भुट्टा छीनकर उसे बताया।

"और वह काला मास्टर कहता था कि मैं अपनी कौम को धोखा नहीं दे सकता।"

"कौम ? कौम किसे कहते हैं ?" तारां ने पूछा।

मैंने कहा, "जैसे तुम मेरी कौम हो।"

"वह कैसे ? वाह···! भला, मैं तुम्हारी कौम कैसे हुई जी ? वाह···।"

"क्योकि मैं तुमको धोखा नही दे सकता।"

"वाह, कैसे नही धोखा देते हो तुम। उस दिन घाटी से बेरियां तोडते वक्त तुमने बीस बेर खाए थे और मुझे सिर्फ सात दिए थे···। फिर मैं तुम्हारी कौम कैसे हुई ? नही जी, मैं तुम्हारी कौम नही बनूगी, हरगिज़ नही बनूंगी, कभी नही बनूंगी।"

यह कहकर तारां मुझसे रूठकर अलग बैठ गई। वास्तव में रुष्ट होकर अलग बैठ गई। मुंह फेरकर अलग बैठ गई। और जब मैंने उसकी गर्दन घुमाकर उसका मुंह अपने सामने घुमाया तो उसकी आंखो मे वाकई आंसू थे।··· मेरा हृदय सहम गया।

मैंने उससे कहा, "अच्छा, आज चलो घाटी पर। मैं सारे बेर तोडकर तुम्हे दे दूगा। आज के सारे बेर तुम्हारे। फिर तो तुम मेरी कौम बनोगी ?"

तारा प्रसन्नता से खिलखिलाकर हंस पड़ी। और तालिया बजाती हुई घाटी की तरफ भागी।

मैं उसके पीछे-पीछे भागा।

घाटी की अगम्य चट्टानो के सायो मे बेरियों की कांटेदार झाड़ियो मे ऊदे-

ऊदे वेर मुस्करा रहे थे। कही पर इन बेरियों का रंग ऊदा न होकर काला था, कहीं पर नारंगी था, कही पर गुलावी, और जो वेरियां बिलकुल कच्ची और खट्टी थी, वे सूरज की पहली किरन के समान सुनहरी थीं; और हर वेरी में शवनमी बूंदो के समान दस-बारह दाने मोतियों के समान वेर चमक रहे थे जैसे वे वेर न हों, सोने के छोटे-छोटे टाप्स हों, जिन्हें कोमलांगी डालियो ने मुस्कराराते हुए पहन लिया था।

एक चट्टान से दूसरी चट्टान की तरफ जाते हुए मैंने एक ऊंची तन्वंगी बेरियो के साये में तारां को पकड़ लिया।

तारां मेरी ओर अबोध भाव से देखती हुई बोली, "क्या है?"

मैंने कहा, "मुझे एक चुम्बन दो।"

"चुम्बन क्या होता है?"

मैंने कहा, "मैंने कल हमीदे को देखा था। उसने वंगले के पिछवाड़े मे बेगमां को पकड़कर यही कहा था।"

"फिर बेगमां ने क्या कहा?" तारां ने लापरवाह होकर बेरी की एक डाल की ओर हाथ बढ़ाते हुए पूछा।

"वेगमां ने कहा—मैं चिल्लाऊंगी, शोर मचा दूंगी। मैं नही दूंगी।"

"समझ गई", तारां बोली, "मक्की का भुट्टा होगा।"

"नही पगली। उसके 'ना' कहने पर हमीदे ने ज़बरदस्ती बेगमां को पकड़ लिया और उसके मुंह पर अपना मुंह रख दिया। मैं कबूतरों की छतरी के पीछे छुपकर खड़ा देख रहा था। फिर बहुत देर के बाद हमीदे ने बेगमां के मुंह से अपना मुह अलग किया और लम्बी सास लेकर बोला—बहुत मीठा था यह चुम्बन।"

"चुम्बन मीठा होता है?" तारां ने पूछा।

"हमीदा यही कहता था। देखें!"

"देखो।"

तारां मेरे बिलकुल समीप आ गई। मैंने हमीदे की तरह दोनो बाजुओं मे उसे पकड़ लिया और उसके मुह पर मुंह रख दिया। एकदम से तारां बिजली की तरह से तड़पकर अलग हो गई और थिरकते हुए बोली, "थू...थू...थू... कहां मीठा है? यह तो बिलकुल फीका है!"

मैंने भी निराशा से थूकते हुए कहा, "बिलकुल फीका है, और तुम्हारे मुंह से मक्का की वास आती है।"

"और तुम्हारे मुंह से नही आती है?" तारां ज़ोर-ज़ोर से थूकते हुए बोली।

"ये वडे लोग भी कितने झूठे और धोखेबाज़ होते हैं", मैंने उस चुम्बन से विलकुल निराश होकर कहा।

"सच कहते हो", तारां क्रोध और घृणा से बोली, "इनकी आदते कितनी गन्दी होती हैं और ये हम बच्चों को गन्दा कहते है। लो आखरे खाओ··· ।"

पहाड़ी भाषा मे ब्लेक बेरियां आखरे कहलाती है। मैं फौरन उचक-उचककर आखरे तोड़ने लगा और तोड़-तोडकर तारां की झोली में डालने लगा। जव तारां की झोली नारगी, गुलावी और कत्थई आखरों से भर गई तो उसने बड़ी अदा से इठलाकर कहा।

"अब वस करो।"

फिर उसने अपनी झोली में से एक आखर निकालकर मेरे मुंह मे रखा और कहा, "खाओ।"

मैंने जीवन मे रसभरे आखरे खाए हैं और शहद पिए हैं। होंठ जो गुलाव की पत्तियो की तरह नाजुक थे··· आखरे जो सफेद क्रीम मे घुले-घुलाए बिल्लौर की प्यालियो में दमक रहे थे··· लव जिनके कोमल कटाव पर दिल का हर तार लरज़ गया··· आखरे जिनकी रंगत पर याक़ूत का गुमा होता था··· । किन्तु उस एक आखरे की मिठास जीभ पर शेष है।

इस घटना के वाद वहादुर अली खा और मेरे पिताजी के बीच 'कुट्टी' हो गई। दोनो ने एक-दूसरे से बोलना-चालना बन्द कर दिया। एक सप्ताह बाद जो स्कूल मे पुरस्कार-वितरण-समारोह हुआ तो मेरे पिताजी उस समारोह में नही गए। इससे पहले वे सदैव जाया करते थे और मुझे भी ले जाया करते थे। वडा वढ़िया समारोह होता था।

आगन मे गेरुए रंग के तम्बू और कनातें तानी जाती थी। चारो ओर आर-पार झंडियां लगाई जाती थी। पुलिस और फौज के सिपाही लाइन लगाकर दूर तक सडक के दोनो ओर खड़े रहते थे और जव राजा साहव की सवारी आती थी तो शाही बैंड ज़ोर-ज़ोर से वजने लगता था और फौज के लोग

'अटेन्शन' खडे हो जाते थे। राजा साहब की चमकती हुई बग्घी को सलामी देते थे। यह बड़ी शानदार बग्घी थी ! उसका कोचवान भी बड़ा शानदार था। तिरछे कोनोवाली राजपूती पगड़ी पहने, सोने-चांदी की झालरो से झमझमाता कोट पहने, हाथ में चाबुक लिए बख्शी पीरादित्तां, जब चार वेलर घोडोंवाली बग्घी की सबसे ऊंची सीट पर बैठा नजर आता था तो उस समय वह अपने शानदार लिबास और भारी गलमुच्छों से राजा साहब से भी बडा आदमी दिखाई देता था।

इसके पश्चात् स्कूल के आंगन में राजा साहब का स्वागत होता था और पांचवीं कक्षा में प्रथम आनेवाला लड़का राजा साहब की प्रशंसा में एक कविता गाकर सुनाता था। सदा वही एक कविता होती थी, जिसे पाचवी कक्षा मे प्रथम आनेवाला लड़का सुनाता था और इस कविता में राजा साहब और उनकी सात पीढियो की प्रशंसा होती थी।

इस कविता के पश्चात् राजा साहब कविता सुनानेवाले लड़के को सदैव पच्चीस रुपये का पुरस्कार देते थे। इसके पश्चात् स्कूल का हैडमास्टर हर चौथे वाक्य में राजा साहब की कृपा और दया का जिक्र करता हुआ स्कूल की रिपोर्ट पेश करता था। रिपोर्ट के आरम्भ और अन्त में सरकार की प्राण और सम्पत्ति की सुरक्षा की प्रार्थना करते हुए अंग्रेज़ सरकार के दरबार मे उनकी तरक्की, इक्कीस तोपो की सलामी और प्रतिष्ठा की वढोतरी की दुआएं मांगता था।

उसके पश्चात् राजा साहब सोने के शब्दों में छपा हुआ अपना सभापति का भाषण पढते थे, जिसपर केशर छिड़का हुआ होता था। उनकी आवाज बडी पतली और बारीक थी, जिसे सुनकर हंसी आती थी। किन्तु सब लडके हंसी को रोककर गर्दन झुकाकर सुनते रहते थे और सभापति का भाषण समाप्त हो जाता था तो राजा साहब अपने हाथ से पुरस्कार-वितरण करते थे। वितरण करने का ढंग यह था कि सैकिण्ड मास्टर एक सूची पर से बारी-बारी लड़कों के नाम पढता जाता था और नाम सुनकर सामने की बड़ी मेज़ पर पडे हुए पुरस्कारो मे से हैडमास्टर उस लडके का नाम देखकर पुरस्कार उठा लेता था और राजा साहब के हाथ में दे देता था। लड़का दोनों हाथ आगे फैलाकर पुरस्कार लेकर झुककर 'जयदेवा' कहता था और पुरस्कार को अपने सीने से चिपटाए खुशी-खुशी अपनी कक्षा की टोली में लौट जाता था।

पुरस्कार-वितरण के पश्चात् फिर राजा साहब की सलामी का बैण्ड बजता था और राजा साहब अपनी बग्घी मे बैठकर चले जाते थे। उनके जाने के बाद ही स्कूल के बच्चो मे मिठाई बटती थी। उस समय आसपास के दूसरे बच्चे भी, वे बच्चे जो स्कूल में नही पढ़ते थे, कनातें और तम्बू फलांगकर स्कूल के आंगन में घुस आते थे और मिठाई लेते थे। रंग-बिरंगी झंडियां लूटी जाती थी और कुछ मिनटो मे ही वह सलीके से सजा हुआ चौड़ा आगन उजड़े मैदान की तरह लुटा, बचा-खुचा और खोसा नजर आता था। हम बच्चों के लिए वह समय सबसे अच्छा होता था, जब राजाजी चले जाते थे। उस समय की एक वर्ष से प्रतीक्षा की जाती थी।

किन्तु इस बार पिताजी समारोह में नही गए और मुझे भी नही ले गए और मुझे जाने भी नही दिया। मैंने बहुत ज़िद की, रोया-गाया, मिट्टी में लोटा, नहाने से इन्कार किया—पर मेरी किसीने एक न मानी और जब मैंने बहुत ज़िद की तो मेरी मां ने मुझे एक पलंग के पाये से बाध दिया, जहां मैं देर तक रोता रहा। जब रो-रोकर थक गया तो वहीं चारपाई के पाये से बधा सो गया। तब मेरी मां को मुझपर बहुत प्यार आया। उन्होने उसी आलम मे मेरी रस्सियां खोलकर मुझे आज़ाद किया और मुझे अपनी बाहों मे उठा लिया और मेरे मुह को चूमते हुए मुझे अपने सीने से लगा लिया। फिर पलंग पर सुला दिया, जहां मैं बहुत देर तक सोया रहा, क्योंकि मैं रो-रोकर बहुत थक गया था।

पिताजी ने राजा साहब से किसी प्रकार की शिकायत न की थी, किन्तु फिर भी सुनते हैं कि राजा साहब के कानों तक विद्रोही भावों की भनक पड़ गई थी—क्योंकि पुरस्कार-वितरण के तत्काल पश्चात् राजा साहब ने शेखू ढक्की के जगल मे शिकार का प्रोग्राम रख दिया।

शेखू ढक्की का विशाल जंगल अंगड नाले के पश्चिमी किनारे से आरम्भ होकर दातार पहाड की चोटी तक फैला हुआ था। इस जंगल में राजा साहब के अतिरिक्त हर किसीको शिकार खेलने की मनाही थी और इस जगल से लकड़ी काटने की भी मनाही थी। इसलिए उस जंगल मे वन्य पशु बिना रोक-टोक विचरते थे और बहुतायत मे पाए जाते थे। चीते, बघेरे, भालू, सुअर और हिरन अधिक संख्या मे पाए जाते थे और प्रायः इस जंगल से नीचे उतरकर किसानो की जमीनो मे घुस आते थे और फसल और पशुओं को हानि पहुंचाते रहते थे।

उठा रखा था ताकि अच्छी तरह से उन लोगों की बातचीत मेरे कान में आती रहे। वर्ना इसके अलावा मैं तो यूं समझिए, लिहाफ में बिना हिले-जुले पत्थर की तरह सुन्न लेटा रहता था।

"तुम्हे मालूम है बहादुर सख्त घायल हुआ है ?"

'नही तो....।" मांजी झूठ-मूठ आश्चर्य से बोलीं, हालांकि उन्हें सब पता था।

"हां तो वह बहुत सख्त घायल हुआ है। उसके बचने की कोई आशा नही है।"

"जो जैसा करेगा, वैसा दण्ड भुगतेगा," मांजी जरा तेज़ स्वर में बोली।

"तुम्हे मालूम है बहादुर कैसे घायल हुआ है ?"

"मैं औरत जात। दिन-भर घर पर रहती हूं। मुझे क्या मालूम ?" मांजी अत्यन्त भोलेपन से कहने लगी।

पिताजी अपने पलंग से जरा और इधर सरक आए। धीरे से बोले, "यह सब किया-धरा राजाजी का है।"

"धीरे से बोलो," मांजी एकदम परेशान होकर बोली।

"हूं......यहां कौन सुनता है ?" पिताजी जरा तेज स्वर में बोले।

"किन्तु राजाजी ने क्या किया ?"

"सुनते हैं, राजाजी के शिकार मे हांकिये कम पड़ रहे थे। राजाजी ने आज्ञा दी कि अगड़ नाले के आसपास के घरो से सब नवयुवक हांकिये के काम के लिए बुलवा लिए जाएं। कप्तान गजेन्द्रसिंह यह आज्ञा मिलते ही चार सिपाही लेकर आसपास के घरो में घुस गया। बहादुर उस समय कपड़े पहनकर स्कूल जाने के लिए तैयार हो रहा था। उसने कप्तान गजेन्द्रसिंह को बहुत समझाया कि वह एक सरकारी अफसर है, स्कूल का हैडमास्टर है, वह हांकिये का काम नहीं कर सकता, जिन्दगी-भर उसने यह काम नही किया, उसे इस नीच काम के लिए विवश न किया जाए। किन्तु कप्तान गजेन्दरसिंह न माना और जब बहादुर ने जरा चूं-चपड़ की तो उसने उसे रायफल के आगे धर लिया।

"हे राम ! हे भगवान ! तू ही सबका रक्षक है। तेरी ही शरण में सब आते हैं। फिर क्या हुआ ?"

"वे चारों सिपाही बहादुर को और दूसरे उसके पास के किसानों को

धकेलकर जंगल में ले गए और उन्हें हांकियों में शामिल कर दिया और कप्तान गजेन्दरसिंह ने एक सिपाही की ड्यूटी लगा दी कि वह हांकियों की इस टोली को देखता रहे, जिसमें बहादुर अली खां शामिल था और अगर बहादुर ज़रा भी भागने की कोशिश करे तो फौरन उसके सिर पर बन्दूक का कुन्दा रख दे।"

"फिर···?"

"बहादुर विवश होकर हाकियो मे घूमता रहा। गजेन्दरसिंह उसको नंगे पांव ही घर से बाहर निकाल लाया था। इसलिए जंगल में घूमने से, दौड़ने से और कांटेदार झाड़ियो से गुजरते हुए बहादुर के पाव में चोटें आ गईं और उसके टखनों से खून बहने लगा और वह लगड़ाकर चलने लगा। फिर भी सिपाही ने उसे नहीं छोड़ा। हां, जब राजाजी ने एक चीते को गोली मारी और सारे जगल मे राजाजी का जय-जयकार होने लगा तो सिपाही का ध्यान दूसरी तरफ चला गया और ऐन उसी वक्त अवसर पाकर बहादुर हांकियों की टोली से भाग निकला। किन्तु सिपाही भी बड़ा होशियार था। सुना है, उसने बहादुर को गोली मार दी।"

"हे राम! हे कृष्ण!! हे परमात्मा!!! तेरा ही आसरा, तेरा ही आसरा। तू ही सबका मालक है और पालक है···। फिर क्या हुआ?"

"कुछ लोग कहते हैं कि गोली खाकर भी बहादुर भागता रहा। कुछ लोग कहते है कि गोली सिपाही ने नही मारी, राजाजी ने मारी है। कुछ भी हो, यह अवश्य सही है कि किसीने उसकी टाग में अवश्य गोली मारी है। यह भी सही है कि गोली खाकर भी बहादुर भागता रहा। इतने मे उसके रास्ते में दूसरी तरफ से एक जगली सूअर आ गया, जिसे हाकिये विरोधी दिशा से हकाकर राजा साहब के मचान की ओर दौड़ा रहे थे। सूअर सीधा, सरपट ऐसी तेज़ी से भागता हुआ आ रहा था कि घायल बहादुर को इधर-उधर सरकने का अवसर न मिला और वह सूअर के पहले आक्रमण से ही नीचे गिर गया और सूअर ने अपने छोटे-से दात से पीठ से कंधे तक उसके सारे शरीर को फाड़कर रख दिया···।"

"त्राहिमाम! त्राहिमाम!! दुर्गा माता, मेरे बच्चे की रक्षा करे, मेरे सुहाग को सलामत रखे! फिर क्या हुआ?"

किन्तु यह जंगल राजाजी की विशेष शिकारगाह थी। इसलिए किसीको शिकायत करने की मजाल न थी।

अंगड़ नाले के पूर्वी किनारे पर बहादुर अली खां के दो घर्राट थे, जिनपर इलाके-भर का अनाज पिसता था। ये दोनों घर्राट बहुत चलते थे और उनपर बहादुर अली खां के नौकर घर्राटी बैठते थे। अनाज पिसवाने के लिए अधिकतर स्त्रिया आती थी और सिर पर बकरी की खालों में अनाज भरकर लाती थी। पनचक्की से आटा पिसवाकर अनाज या आटे की सूरत में घर्राटिये को कमीशन दे करके चली जाती थीं। इन दोनों घर्राटों से लगे हुए बहादुर अली खां की दोनो पत्नियों के धान के खेत थे। धान के खेतो से परे एक ऊंची जगह पर बहादुर अली खां का घर था।

इस घर के सामने उन्नाव के दो बड़े-बडे झाड़ थे और नागपातियों और आड़ुओं के वृक्ष थे। घर के पीछे अखरोट के दो बड़े-बड़े वृक्ष थे, जिनके साये में दोपहर मे बहादुर अली खां के पशु आराम करते थे। अखरोटों के वृक्षों के पीछे मकई के खेत थे जो सीढियो की तरह एक-दूसरे के ऊपर चढ़ते हुए निक्की ढक्की तक चले गए थे। निक्की ढक्की से ऊपर फिर सरकारी शिकारगाह आरम्भ हो जाती थी।

जिस दिन राजा साहब शिकारगाह को प्रस्थान कर गए, उसी दिन शाम के समय अस्पताल के निकट हल्ला-सा हुआ और मैं उसे देखने के लिए दौड़ता-दौड़ता तत्काल अस्पताल के बड़े दरवाज़े पर पहुंच गया। वहां बहुत-से लोग जमा थे। कई एक शिकारी थे जो अपने कंधो पर बन्दूकें लटकाए चले आ रहे थे, कुछ लोग चिन्हो की मशालें जलाए आ रहे थे, क्योंकि पहाड़ों में शाम ही से अंधेरा बढ जाता है। कुछ गूजर लोग चारपाई पर एक घायल आदमी को बांधे चले आ रहे थे और चारों ओर दबे-दबे स्वरों में कुछ खुसर-फुसर हो रही थी, जो मेरी समझ में नही आती थी।

ये लोग अस्पताल के बड़े फाटक के अन्दर आकर सलेटी रंग की बजरी-वाली सड़क पर चलने लगे, जो बाग के किनारे-किनारे से होकर अस्पताल के बरामदे तक चली जाती थी। अस्पताल के बरामदे की सीढ़ियां चढ़कर उन्होंने चारपाई कन्धों से उतारकर बरामदे के पक्के फर्श पर रख दी और स्वयं अपना पसीना पोंछने लगे।

जब, मैंने देखा कि घायल आदमी के शरीर से खून बह रहा है और वह घायल आदमी बहादुर के सिवा और कोई नही है। इतने मे मेरे पिताजी को भी खबर मिल गई थी और वे भी बंगले से भागे-भागे अस्पताल के बरामदे तक पहुंच चुके थे। उन्होने बहादुर को देखते ही उसे आपरेशन-रूम मे ले जाने के लिए कहा। उसी समय अस्पताल के चार अर्दली आए और घायल और बेहोश बहादुर को उठाकर अस्पताल के अन्दर ले गए।

मैं भी आपरेशन-रूम के अन्दर जाना चाहता था, किन्तु मेरे पिताजी ने डाटकर अस्पताल से बाहर निकाल दिया। पिताजी की डांट सुनकर मैं तत्काल रोता हुआ वापस अपने बगले को चला गया, हालांकि मेरा दिल अस्पताल में ही था।

बहुत रात गए तक पिताजी आपरेशन-रूम मे ही रहे। कोई चार-पांच घटे के बाद लौटे। उस समय तक मै खाना खाकर मां के बिस्तर मे दुबक गया था। मुझे कडी नीद आ रही थी। किन्तु मैं किसी न किसी प्रकार आखें झपकता हुआ, आंखें मलता हुआ, नीद को भागने का प्रयत्न करता रहा। इतने मे मेरे पिताजी आए। आकर उन्होंने गर्म पानी से स्नान किया, खाना खाया। खाना खाने के बाद उन्होंने हुक्का पीया। हुक्का पीने के बाद वे कपड़े बदलकर सोने के कमरे मे आ पहुंचे।

पहले तो चुपचाप अपने बिस्तर पर पड़े रहे। मेरी माजी भी चुप रहीं। वे मेरे पिताजी का स्वभाव जानती थी और वे यह भी जानती थी कि पिताजी स्वय बात करेंगे।

कुछ अर्से के बाद, जो मुझे बहुत लम्बा मालूम हुआ, मेरे पिताजी ने अपने पलंग पर करवट ली और मेरी मां के पलंग की तरफ मुड़कर बोले :

"काके दी मां, सो गई ?"

"ऊंह······नही तो······।" मांजी लिहाफ से जरा मुह बाहर निकालकर बोली, "क्या है ?"

मेरे पिताजी ने इधर-उधर देखा। धीरे से बोले, "काका जागता है कि सो गया है ?"

"वो बेचारा तो कब का सो गया।"

किन्तु मेरी सारी नीद गायब हो चुकी थी। मैंने अपने लिहाफ का मुह जरा-सा

उठा रखा था ताकि अच्छी तरह से उन लोगों की बातचीत मेरे कान मे आती रहे। वर्ना इसके अलावा मै तो यूं समझिए, लिहाफ मे बिना हिले-जुले पत्थर की तरह सुन्न लेटा रहता था।

"तुम्हे मालूम है बहादुर सख्त घायल हुआ है ?"

"नही तो....।" मांजी झूठ-मूठ आश्चर्य से बोली, हालांकि उन्हें सब पता था।

"हां तो वह बहुत सख्त घायल हुआ है। उसके बचने की कोई आशा नही है।"

"जो जैसा करेगा, वैसा दण्ड भुगतेगा," मांजी ज़रा तेज़ स्वर मे बोली।

"तुम्हे मालूम है बहादुर कैसे घायल हुआ है ?"

"मै औरत जात। दिन-भर घर पर रहती हूं। मुझे क्या मालूम ?" माजी अत्यन्त भोलेपन से कहने लगी।

पिताजी अपने पलंग से ज़रा और इधर सरक आए। धीरे से बोले, "यह सब किया-धरा राजाजी का है।"

"धीरे से बोलो," मांजी एकदम परेशान होकर बोली।

"हूं......यहा कौन सुनता है ?" पिताजी ज़रा तेज़ स्वर में बोले।

"किन्तु राजाजी ने क्या किया ?"

"सुनते हैं, राजाजी के शिकार में हांकिये कम पड़ रहे थे। राजाजी ने आज्ञा दी कि अगड़ नाले के आसपास के घरो से सब नवयुवक हांकिये के काम के लिए बुलवा लिए जाएं। कप्तान गजेन्दरसिह यह आज्ञा मिलते ही चार सिपाही लेकर आसपास के घरो मे घुस गया। बहादुर उस समय कपड़े पहनकर स्कूल जाने के लिए तैयार हो रहा था। उसने कप्तान गजेन्दरसिह को बहुत समझाया कि वह एक सरकारी अफसर है, स्कूल का हैडमास्टर है, वह हाकिये का काम नही कर सकता, ज़िन्दगी-भर उसने यह काम नही किया, उसे इस नीच काम के लिए विवश न किया जाए। किन्तु कप्तान गजेन्दरसिह न माना और जब बहादुर ने ज़रा चूं-चपड़ की तो उसने उसे रायफिल के आगे धर लिया।

"हरे राम ! हे मालका ! तू ही सबका रक्षक है। तेरी ही शरण मे सब आते है। फिर क्या हुआ ?"

"वे चारों सिपाही बहादुर को और दूसरे उसके पास के किसानो को

धकेलकर जंगल में ले गए और उन्हें हांकियों में शामिल कर दिया और कप्तान गजेन्दर्रसिंह ने एक सिपाही की ड्यूटी लगा दी कि वह हांकियो की इस टोली को देखता रहे, जिसमे वहादुर अली खां शामिल था और अगर बहादुर जरा भी भागने की कोशिश करे तो फौरन उसके सिर पर वन्दूक का कुन्दा रख दे।"

"फिर…?"

"बहादुर विवश होकर हाकियो मे घूमता रहा। गजेन्दरसिंह उसको नंगे पाव ही घर से बाहर निकाल लाया था। इसलिए जंगल मे घूमने से, दौड़ने से और काटेदार झाड़ियो से गुजरते हुए बहादुर के पाव में चोटें आ गईं और उसके टखनो से खून बहने लगा और वह लगड़ाकर चलने लगा। फिर भी सिपाही ने उसे नही छोड़ा। हां, जब राजाजी ने एक चीते को गोली मारी और सारे जगल मे राजाजी का जय-जयकार होने लगा तो सिपाही का ध्यान दूसरी तरफ चला गया और ऐन उसी वक्त अवसर पाकर बहादुर हांकियो की टोली से भाग निकला। किन्तु सिपाही भी बड़ा होशियार था। सुना है, उसने वहादुर को गोली मार दी।"

"हे राम! हे कृष्ण!! हे परमात्मा!!! तेरा ही आसरा, तेरा ही आसरा। तू ही सबका मालक है और पालक है…। फिर क्या हुआ?"

"कुछ लोग कहते है कि गोली खाकर भी वहादुर भागता रहा। कुछ लोग कहते है कि गोली सिपाही ने नही मारी, राजाजी ने मारी है। कुछ भी हो, यह अवश्य सही है कि किसीने उसकी टांग में अवश्य गोली मारी है। यह भी सही है कि गोली खाकर भी बहादुर भागता रहा। इतने में उसके रास्ते मे दूसरी तरफ से एक जगली सूअर आ गया, जिसे हाकिये विरोधी दिशा से हकाकर राजा साहब के मचान की ओर दौड़ा रहे थे। सूअर सीधा, सरपट ऐसी तेजी से भागता हुआ आ रहा था कि घायल बहादुर को इधर-उधर सरकने का अवसर न मिला और वह सूअर के पहले आक्रमण से ही नीचे गिर गया और सूअर ने अपने छोटे-से दात से पीठ से कंधे तक उसके सारे शरीर को फाड़कर रख दिया…।"

"त्राहिमाम! त्राहिमाम!! दुर्गा माता, मेरे बच्चे की रक्षा करे, मेरे सुहाग को सलामत रखे! फिर क्या हुआ?"

"अब वह अस्पताल में पड़ा है। मैंने उसे बचाने का बहुत प्रयत्न किया है, पर शायद ही बचे और मेरा खयाल है कि अब वह ना ही बचे तो ठीक है।"

"हाय-हाय, ऐसे पापी शब्द क्यों बोलते हो ?"

"इसलिए कहता हूं कि राजा साहब ने उसकी दोनों पत्नियो को उसके घर से उठवाकर अपने हरम मे डाल लिया है।"

"है ! सच ! नही-नही, क्या तुम सच कहते हो ?"

मेरे पिताजी चुप रहे, कुछ नही बोले। बहुत देर बाद मेरी मां बोली, "यह तो जुल्म है, अंधेर है।"

पर पिताजी फिर भी कुछ नही बोले।

"धरती का कलेजा फट जाएगा। काके दे बाप्पू ! यह तो घोर अन्याय है।"

मेरे पिताजी के पलंग से कोई आवाज़ नही आई। शायद मेरे पिताजी सो गए थे। फिर मेरी मांजी ने मुझे अपने सीने से लगा लिया और धीरे-धीरे सिसकने लगी।

मेरे पिताजी का विचार था कि बहादुर नहीं बचेगा। किन्तु ऐसा मालूम होता था जैसे बहादुर ने जीवित रहने का निश्चय कर लिया था।

पहले छः-सात दिन तो उसके जीवन और मृत्यु के मध्य बीते। इन दिनों वह अर्धमूर्छितावस्था मे ही रहता था और जब भी कुछ क्षणो के लिए उसे होश आता था तो घावों के दर्द से व्यग्र होकर एक जानवर की तरह डकराता था और मेरे पिताजी शीघ्र ही कोई इन्जेक्शन देकर फिर बेहोश कर देते थे।

इन छः-सात दिनों मे गांव-गांव मे उसकी दर्दनाक कहानी पहुंच चुकी थी। लोग कुछ कहते नही थे, किन्तु धीरे-धीरे गरीब मुसलमान किसान, खद्दर की मैली कमीज़ और मैला कच्छा पहने, कंधे पर एक गलीज़ पट्टू लटकाए उसकी तबीयत पूछने के लिए आने लगे। कोई उसके लिए दूध लाता, कोई फल, कोई कलाडी, कोई खाली हाथ भी आता था। किन्तु दुआओं से भरा हुआ दिल लिए आता था।

पहले आठ-दस लोग दिन में आते थे। फिर बीस-तीस आने लगे। फिर तो पचास आने लगे और दिन पर दिन यह संख्या बढ़ती जाती थी। ये लोग कुछ

कहते नहीं थे, परन्तु अब मालूम होता था कि जैसे बहादुर का जीवन उनके जीवन का प्रश्न बन गया था। यदि बहादुर ज़िंदा रहेगा तो वे भी ज़िंदा रहेंगे। यदि बहादुर मर जाएगा तो वे भी मर जाएंगे और उनकी आंखों के सारे सपने सदा-सदा के लिए स्वर्गवासी हो जाएंगे। कोई कुछ कहता नहीं था, किसी से शिकायत नहीं करता था। किन्तु यह सबको ज्ञात था कि आज घर-घर में बहादुर के जीवन की सुरक्षा के लिए दुआएं मांगी जा रही है।

पहले पंद्रह-बीस दिन तो उस दुविधा मे कटे। उसके पश्चात् बहादुर के स्वास्थ्य ने करवट ली और मौत के आलम से ज़िंदगी के आलम की ओर लौटने लगा। फिर जब उसका मेदा हल्का-सा भोजन स्वीकार करने लगा तो उसने धीरे-धीरे पिताजी से बातचीत करनी प्रारम्भ की।

सबसे पहले उसने जो प्रश्न किया, वह गुलनार और लैला के सम्बन्ध में था और पिताजी जानते थे कि वह अपनी बीवियों को कितना चाहता है। उन्हें यह भी ज्ञात था कि वह होश में आकर सबसे पहला प्रश्न यही करेगा। इसलिए वे उसके लिए पहले ही से तैयार हो चुके थे। उसकी बात सुनते हुए उन्होंने बात काटते हुए कहा :

"गुलनार बेचारी पर तो यह खबर सुनते ही दिल का दौरा पड गया। वह अपने घर मे बिस्तर पर लेटी है। मैंने उसे बिस्तर पर से उठने से भी मना कर दिया है। पर लैला को उसकी देखभाल के लिए लगा दिया है। क्या तुम चाहते हो कि मैं उनको इस हालत में यहा बुला भेजूं ?"

"नहीं-नहीं, डाक्टर साहब ! मगर गुलनार ठीक तो हो जाएगी ?"

"बिलकुल फिक्र न करो, बहादुर ! उसका ज़िम्मा मैं लेता हूं। तुम आराम करो। किसी प्रकार की बातचीत किसीसे मत करो। आराम करो और अपनी ज़िंदगी के लिए लडो।"

बहादुर का चेहरा एकदम जैसे बिलकुल पत्थर का सा हो गया। उसने अपनी दोनों आंखें बन्द कर ली और धीरे से बोला, "मैं आखरी दम तक लड़ूंगा।"

किन्तु कभी-कभी उसके हृदय पर निराशा का आक्रमण होता तो वह मेरे पिताजी की तरफ ऐसी दृष्टि से देखने लगता कि जैसे मेरा बाप उसका हत्यारा हो। जब वह छुरी, कैंची, चाकू इत्यादि लेकर उसके बिस्तर के पास आते या

उसे आपरेशन-रूम के बिस्तर पर लिटाते तो उसकी दृष्टि में संशय और सन्देह के गहरे साये लरजने लगते। उसे वे सब बातें याद हो आती जो उसने उस दिन लड़ाई के समय मेरे पिताजी से कही थी और उसका रंग फक्क हो जाता और उसकी सांस गले में अटकने-सी लगती और वह उस समय मेरे पिताजी की एक-एक हरकत को, नश्तर की हर चोट को, कैंची की हर चाल को—शक और संशय से देखता, जैसे मेरे पिताजी एक डाक्टर न हो, जल्लाद हों और उसे कत्ल करने जा रहे हों !

प्रतिदिन जब वह आपरेशन थियेटर में ले जाया जाता था तो वह अपने आपको मुर्दा समझ लेता था। प्रतिदिन मेरे पिताजी उसके दिल की हालत को ताड़ जाते थे। किन्तु भांपकर भी खामोश रहते थे। न बहादुर कभी कुछ कहता था न मेरे पिताजी उसे कुछ उत्तर देते थे। उनकी निगाहो मे न कोई इन्कार था न कोई इकरार। न उसकी सन्देहों की पूर्ति, न उसके दिल की तसल्ली उनकी निगाहो मे होती थी। वे अत्यन्त मौन होकर अपना कार्य किए जाते थे।

महीना सवा महीना बीतने के पश्चात् एक दिन मेरे पिताजी अत्यन्त परेशानी की हालत मे अस्पताल से लौटे। आज उन्होने खाना नही खाया। शाम को स्नान भी नही किया। सिर-दर्द का बहाना करके विस्तर पर पड़ गए। मेरी मां को उनके सारे 'मूड' मालूम थे। वे खाने के लिए ज़िद करके अन्त मे चुप हो गईं। उसके पश्चात् सोने के समय तक दोनो पति-पत्नी में कोई बात नही हुई।

हां, जब घड़ी ने रात के ग्यारह बजाए तो मेरे पिताजी ने धीरे से मेरी मां के पलंग की ओर करवट ली और बोले, "काके दी मां, सो गईं ?"

"नही, जाग रही हूं।"

"काका सो गया ?"

"वह बेचारा तो कब का सो गया है।"

मेरे पिताजी कुछ देर तक चुप रहे। कुछ देर मौन रहने के पश्चात् रुक-रुककर बोले, "आज ख्वाजा अलाउद्दीन आया था।"

"क्या कहता था ?"

"राजा साहब का संदेशा लाया था।"

"क्या संदेशा ?"

"राजा साहब ने कहला भेजा है कि बहादुर के जीवन को समाप्त कर दिया जाए।"

मेरी मां सन्नाटे मे आ गईं। मेरा दिल भी धक्क से रुक गया। मैं चीखने ही वाला था कि बड़ी कठिनाई से मैंने अपने मुह पर हाथ रख दिया। मेरी मां बहुत देर तक कुछ नही बोली। मेरे पिताजी स्वयं बोले :

"ख्वाजा अलाउद्दीन कहता था, बहादुर को जेल में डालने से या उसे गोली मार देने से प्रजा मे विद्रोह फैल जाने का अन्देशा है। डाक्टर साहब से कहो कि वे उसकी गले की नस काट दें।"

मेरी मां ने अपना सांस जोर से अन्दर को खीचा। फिर पत्थर की तरह सुन्न हो गईं।

"और ख्वाजा अलाउद्दीन कहता था—यह सबसे अच्छा तरीका है। बहादुर प्राकृतिक मृत्यु मर जाएगा और किसीको खबर तक न होगी। नश्तर की एक हल्की-सी खरोंच से एक नस न कट गई एक रग कट गई। यहा किसको पता चलता है ?"

"पर तुम तो डाक्टर हो ! डाक्टर जान लेते हैं कि जान बचा लेते हैं ?"

"मैं इस रियासत का शाही डाक्टर हूं। राज्य-दरबार से आदर पाता हूं। मेरे पास एक बड़ा बंगला है। एक बाग है, दस एकड़ जमीन है। दो माली हैं, पांच नौकर हैं; सम्मान है, आदर है, पद है, वैभव है—यह सब कुछ नश्तर की एक हल्की-सी जरब से बच सकता है, काके दी मा !"

मेरी मां का दिल अन्दर ही अन्दर बैठने लगा। वे रुंधे हुए स्वर मे बोली, "फिर तुमने क्या जवाब दिया ?"

"मैंने एक महीने की मोहलत मांगी है।"

मेरी मा का सारा शरीर कांपने लगा जैसे लिहाफ के अन्दर ही अन्दर जाड़ा लगकर उन्हे बुखार चढ रहा हो। वे घबराकर बिस्तर से उठ बैठी। उन्होंने मेरे पिताजी से कुछ नही कहा, बल्कि भागकर बेडरूम के सामनेवाले पूजा के कमरे का दरवाजा खोलकर अन्दर चली गईं और जाते ही भगवान राम के चरणो में लेट गईं।

मैं भी सब कुछ भूलकर बिस्तर पर उठकर बैठ गया और अपनी मां को

सामने के कमरे में फर्श पर निढाल देखकर रोने लगा।

अचानक मेरे पिताजी ने मुझे अपनी गोद में उठा लिया और जब वे मुझे चूमकर पुचकारने लगे तो मैंने देखा कि उनकी आंखों से आंसू गिर रहे है।

एक मास में अब केवल एक दिन शेष था। जब मेरे पिता पट्टी करने के लिए बहादुर के कमरे में प्रविष्ट हुए तो उनके साथ दो कम्पाउडर थे, दो अर्दली थे, और आपरेशन सम्बन्धी सारा सामान ट्राली में पड़ा उनके पास रखा हुआ था। किन्तु आज उन्होंने अपना कार्य आरम्भ करने से पहले सबको बाहर निकाल दिया और बाहर निकालकर कमरे का दरवाजा अन्दर से बद कर लिया और स्वयं ही उसके घावों की पट्टियां खोलने लगे।

बहादुर के बहुत-से घाव-भर चुके थे, किन्तु कई एक घाव अभी हरे थे। इन घावो को धोकर मेरे पिताजी ने अच्छी तरह साफ किया। फिर एक नश्तर हाथ मे लेकर बोले, "······बहादुर······!"

"जी !"

"क्या तुम्हे मालूम है—गुलनार और लैला कहां हैं ?"

बहादुर ने सिर झुका लिया। देर तक कुछ नहीं बोला।

मेरे पिताजी बोले, "मैंने झूठ बोला था।"

"मुझे मालूम है।"

"तुम्हें किस तरह मालूम है ? तुम्हे किसने बताया ?" मेरे पिताजी आश्चर्य से बोले, क्योकि उन्होने सब कम्पाउंडरो और अर्दलियों से मना कर रखा था।

"तुमसे किसने कहा ?"

"मुझसे किसीने नही कहा है, पर मुझे मालूम है।"

"लेकिन शायद तुम्हें यह मालूम नहीं है कि राजा साहब ने हुक्म दिया है कि तुम्हे अस्पताल में ही खत्म कर दिया जाए।"

"नही, नही।" कमजोर बहादुर दोनों बाजुओ का सहारा लेकर बैठ गया।

"हां, यह राजाजी का हुक्म है। और आज तुम्हारी जिन्दगी का अन्तिम दिन है।"

बहादुर गौर से डाक्टर साहब के नश्तर की ओर देखते हुए बोला, "नहीं,

नहीं, आप ऐसा नहीं कर सकते।"

नश्तर देर तक हवा में अटका रहा। अन्त में मेरे पिताजी बहुत ही धीमे स्वर में बोले, "बहादुर, क्या तुम चल सकते हो?"

"मुझे पता नहीं है डाक्टर साहब!"

"तुम्हारी पीठ के घाव अब अच्छे हो चुके हैं। बाईं टांग के घाव भी भर चुके हैं। केवल दाईं टांग के घाव बाकी हैं और दाएं बाजू के जोड़ का घाव।... बहादुर, क्या तुम चल सकते हो?"

"मैं कह नहीं सकता डाक्टर साहब! इस वक्त जो आपने कहा है, उसे सुनकर तो मेरे बदन में ज़रा-सी ताकत नहीं रही।"

"मैं तुम्हे एक चास देता हूं। आज रात-भर तुम्हारे कमरे में कोई नही आएगा। मैं सबसे कह दूंगा कि मैंने तुम्हे नीद की दवा देकर सुला दिया है और कोई तुम्हारे कमरे मे न आए। मैं तुम्हारे कमरे के बाहर ड्यूटी देनेवाले अर्दली को भी किसी बहाने अपने घर बुला लूगा। रात के अंधेरे मे अगर तुम कमरे से निकलकर बाग के पश्चिमी कोने तक पहुच सको तो वहां तुम्हारा दोस्त तुम्हे एक घोडा लिए मिलेगा।"

बहादुर की आंखों मे आंसू भर आए। उसने ज़ोर से मेरे पिताजी का हाथ पकड लिया।

"डाक्टर साहब, डाक्टर साहब! यह आप क्या कह रहे हैं?"

"मैं केवल इतना कहना चाहता हूं कि इस धरती पर इस राज के दिन पूरे हो चुके है। मैं हिन्दू और मुसलमानों के वैभिन्य के उतना ही खिलाफ हूं जितना उस दिन था—जिस दिन कि मैंने तुमसे लड़ाई मोल ली थी। पर मैं आज यह भी कहूंगा कि किसी हिन्दू को किसी मुसलमान या किसी मुसलमान को किसी हिन्दू पर जुल्म करने का हक नही है। मेरे पेशे ने मुझे मानव के जीवन का आदर करना सिखाया है और जिसने तुम्हारी इज्ज़त ली है; तुम उसके खिलाफ हर तरह से लडने का हक रखते हो।"

यह कह मेरे पिताजी ने नश्तर वापस ट्राली की ट्रे में रख दिया और सिर झुकाए धीरे से बहादुर के कमरे से निकल गए।

दूसरे दिन सुबह नाश्ता करके मैं अंग्रेजी की ए, बी, सी वाली पुस्तक लेकर घर से बाहर निकला और मां से कहा कि मैं घर का पाठ आलूबुखारे के

पेड़ के नीचे बैठकर याद करता हूं। एक मास से पिताजी मुझे प्रतिदिन अंग्रेजी पढ़ा रहे थे। इससे पहले भी घर में पिताजी कई बार मुझसे अंग्रेजी मे वार्तालाप करते थे और मुझे भी अंग्रेज़ी में उत्तर देना सिखाते थे और लगातार प्रयत्नों से मैं इतनी छोटी-सी आयु में साधारण प्रश्नो के उत्तर सर-सर अंग्रेज़ी में देने लग गया था और प्रायः जब हमारे घर में अफसर लोग मेहमान आते थे तो उनके मनोरंजन के प्रोग्राम में मेरी अंग्रेजी की बातचीत भी शामिल होती थी।

मेरी बातचीत सुनकर श्रोता लोग दंग रह जाते थे और मै शर्माकर मुंह मे उंगली दबा लेता था।

अंग्रेज़ी मे बातचीत तो मैं एक अर्से से सीख चुका था, किंतु पुस्तकीय ज्ञान मुझे बिलकुल नही था। अब एक माह से पिताजी ने मुझे अंग्रेजी शब्दों की एक बड़ी सुन्दर-सी पुस्तक लाकर दी थी जिसके हर पृष्ठ पर सात रंगोंवाली तस्वीरें थीं। आजकल मै यही पुस्तक पढ़ रहा था।

मांजी मेरी बात सुनकर बोली, "तू वहीं आलूबुखारे के पेड़ के नीचे बैठकर पढ़। इधर-उधर कही गया तो याद रखना!"

मां ने इतना कहकर दूर से ही मुझे दिखाके एक तमाचा घुमाया और मैंने हंसकर उन्हे विश्वास दिलाने के लिए कहा, "नही मा, मैं कही नहीं जाऊंगा। वही बैठकर अपना पाठ याद करता हूं।"

आलूबुखारे के पेड़ के नीचे बैठने का भी एक कारण था। हमारे बाग में यू तो अलूचों के बहुत-से पेड़ थे और चेरी यानी जापानी अलूचो के भी कई वृक्ष थे। किंतु सबसे बड़ा जो अलूचा होता है और जो सबसे मीठा होता है, और जो पककर दूसरे से बिलकुल गहरा सुर्ख हो जाता है और जिसका आकार बिलकुल एक आलू जितना बड़ा होता है—जिसे लोग आलूबुखारा कहते हैं—उसका केवल एक ही पेड़ हमारे बाग मे था। आलूबुखारे सब अलूचों मे सबसे अन्त मे पकते है। किंतु अब तो आलूबुखारो का मौसम भी न था। अब तो पतझड़ का मौसम शुरू होनेवाला था।

चिनारो के पत्ते अब बिलकुल लाल हो चले थे। आलूबुखारे तो कबके खत्म होके हजम हो चुके थे। फिर भी जो मैं आलूबुखारे के पेड़ ही के नीचे बैठकर पाठ याद करनेवाला था, तो उसका एक विशेष कारण था।

पिताजी ने मुझे अंग्रेजी की जो रंगदार तस्वीरोवाली पुस्तक लाकर दी थी,

उसमे एक तस्वीर तो वहुत ही सुन्दर थी। यह एक अग्रेजी चिड़िया का घोसला था। और उसके अन्दर तीन वहुत ही सुन्दर चमकते हुए अंडे रखे थे, विलकुल चिट्टे सफेद अंडे, जिनपर नीले रग के गोल-गोल दाग थे। और विलकुल ऐसे ही नीले चितले अडोवाला घोसला मैंने आलूबुखारे की घनी टहनियों मे छुपा हुआ देखा था। पहले तो उन्हे देखकर मैं खुशी से कांपता रहा। फिर मैंने एक अंडा उठाकर अपनी हथेली पर रखा। हाय ! वह अंडा कितना सुन्दर था।

मेरे जी मे आया कि मैं इस अडे को उठाकर अपनी जेव मे डाल लूं। पर फिर मुझे अपनी मां की वात याद आई। माजी ने मुझे एक बार बुलवुल के अडे चुराने पर वहुत वुरी तरह डाटा था और मुझे बताया था कि यदि फिर कभी तुम किसी चिडिया के अण्डे चुराओगे तो सारे घर पर आफत आ जाएगी और चिडिया रो-रोकर परमात्मा से फरियाद करेंगी और परमात्मा तुमको चिडियों के अण्डे चुराने की वहुत बड़ी सजा देंगे। संभव है, तुम किसी दिन चलते-चलते घर का रास्ता भूल जाओ, या और किसी ऐसे घने जंगल में खो जाओ, जहां से तुमको घर वापस आने का रास्ता न मिले और तुमको फिर एक उकाब आकर अपने परो में उठाकर किसी दूर देश ले जाएगा।

इस तरह एक लम्बी-चौड़ी कहानी मां ने मुझे डराने के लिए सुनाई थी। जिसे सुनकर मेरे दिल पर इतना गहरा प्रभाव हुआ था कि उस दिन के बाद से मैंने चिड़ियो के घोसलो से अण्डे चुराने का विचार छोड़ दिया था। फिर भी कभी-कभार अपने शौक से विवश होकर अण्डो के घोसलो तक पहुच जाता था और शाखों को परे हटाकर देर तक उन्हे देखा करता था। किन्तु ये अंडे तो इतने खूवसूरत थे कि मैने जीवन मे आज तक कभी नही देखे थे। उनका स्वच्छ सफेद रग, पर नीले-नीले चितले ! जी चाहता था कि वस, फौरन इन्हे उठाकर जेब में डाल लू। किन्तु माजी की भयानक कहानी मुझे याद थी। इसलिए देर तक हसरत से उनको देखने के वाद मैंने सवसे पहले उसी पेड़ की तरफ झुकाव किया।

वहा मुझसे पहले ही तारां पेड़ के नीचे उपस्थित थी और हाथ में पीतल की एक छोटी-सी कटोरी लिए वह मेरा इन्तज़ार कर रही थी।

"इसमें क्या है ?" मैंने आते ही पूछा।

वह बोली, "तुम्हारे लिए मीठे चावल लाई हू।"

"तुम्हारे घर में आज मीठे चावल पके हैं ?"

"हां।"

"क्यों ? आज कोई त्योहार है ?"

"नहीं। आज ममदू की मां चावल और शक्कर लाई थी और मेरी मां को दे गई थी। बोल रही थी, इनको पका के खालो। आज हमारा बहादुर अस्पताल से फरार हो गया है।"

"बहादुर अस्पताल से भाग गया है ! वह क्यों ?"

"मुझे क्या मालूम ? तुमको मालूम होना चाहिए, डाक्टर के बेटे तुम हो, मैं नहीं हूं।"

"मुझे तो कुछ मालूम नहीं है", मैंने कुछ बुझकर कहा, "मुझे तो किसीने कुछ नहीं बताया। वे लोग तो मुझे कभी कुछ नहीं बताते।"

"हां, सुना है कि वह कल रात ही को अस्पताल से भागकर कहीं चला गया और आज सारे इलाके के घरों में मीठे चावल पके हैं।"

"भागने पर मीठे चावल क्यों पकते हैं ?" मैंने पूछा।

"हां, मीठे चावल पकते हैं और भागनेवाले की लम्बी उम्र के लिए लोग दुआ भी मांगते हैं। लो, चावल खाओ।"

"तुम भी खाओ।"

"मैं तो खाकर आई हूं। बस, यह ज़रा-से चावल तुम्हारे लिए मां से आंख बचाकर ले आई हूं।"

मैं चावल खाने लगा। चावल वाकई बहुत मीठे थे और उनमें से बढ़िया बासमती की खुशबू आती थी और उनका एक-एक दाना सोने की तरह पीला था। मुझे खाते देखकर तारा के मुंह में भी पानी आ गया और वह भी मेरे साथ मिलकर चावल खाने लगी। बहुत जल्दी हम दोनों ने पीतल की कटोरी साफ कर दी।

तारा मुंह पोंछते हुए बोली, "अब चढ़ो पेड़ पर, अंडे देखेंगे।"

अतः हम दोनों शाखों पर बन्दरों की तरह झूलते हुए उस स्थान पर पहुंचे जहां वे डालें एक-दूसरे के गले में बांहें डाले लेट रही थीं। चारों ओर छोटी-छोटी डालियां थीं और पत्तों से भरी हुई थीं। हमने डालियां हटा घोंसले पर निगाह डाली।

"हाय ! कितने प्यारे हैं।" तारां खुशी से चिल्लाई और अनायास उसका हाथ अण्डों की ओर बढ गया।

"हाथ मत लगाना।"

"बस, एक अण्डा उठाऊंगी, बस एक अण्डा। चिड़िया को क्या पता चलेगा ?"

"नही", मैंने उसे समझाते हुए कहा, "यह अग्रेज चिडिया के अण्डे हैं और अग्रेज़ चिड़िया सब कुछ जानती है। उसे सब कुछ मालूम हो जाएगा कि हमने उसका अण्डा चुराया है। फिर वह परमात्मा के पास जाकर हमारी शिकायत करेगी और परमात्मा हमारे घर का रास्ता भुला देगा और हमे किसी घने जंगल मे खो देगा—जहा से हमको एक बहुत बड़ा उकाब उठाकर किसी दूर देश में जाकर पटक देगा…।"

"हाय राम !" कहकर तारां चिल्लाई। उसने मेरे कहने के बावजूद एक अण्डा उठा लिया था। किन्तु जब मैंने उसे कहानी का अन्त सुनाया तो घबराकर उसने अण्डा छोड़ दिया। मैंने लपककर उसे पकडना चाहा, किन्तु अण्डा डालियो से फिसलता हुआ नीचे चला गया और पेड़ के नीचे गिरकर टूट गया।

कुछ क्षणो के लिए हम दोनों भौंचक्के-से रह गए और आश्चर्य से एक-दूसरे का मुह देखने लगे। अब क्या होगा ? अब क्या होगा ?

फिर अत्यन्त दुःखित और बुझे-से होकर हम दोनों पेड़ से नीचे उतरे और टूटे हुए अण्डे के खोल को उठाकर देखने लगे। खोल जगह-जगह से टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था और उसमे से सफेद और पीले रग की जर्दी बहकर धरती मे जज्ब हो रही थी।

तारां ने सहमकर इधर-उधर देखा। भय से उसकी आंखो मे आसू भरे हुए थे। वह डरते-डरते मेरा हाथ पकड़कर बोली, "अब क्या होगा ?"

मैंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, "अब क्या होगा ? अब माजी से सब कहना पड़ेगा। वे मिसिरजी को बुलाएगी, मिसिरजी मन्तर पढ़ेंगे, मुझे सतनाजे मे तोलेंगे। फिर मांजी मुझे मन्दिर में ले जाएगी, गुरुद्वारे, फिर पीर साहब के मजार पर—जहां मैं अपने दोस्त जद्दे से मिलूगा।"

"और मैं क्या करूंगी ?" तारा दुःखी होकर बोली, "मेरी मा तो बहुत गरीब है। वह मुझे सतनाजे में नही तोल सकती। वह तो मुझे मारेगी।"

"नही मारेगी। तुम उससे कुछ मत कहना। मैं अपने दोस्त जद्दे से कहकर तुम्हारे नाम की एक पोटली पीर, साहब के मज़ार पर बंधवा दूंगा। तुम्हारा पाप भी धुल जाएगा।"

"हा, यह ठीक है", तारां एकदम खुश होकर बोली और अचानक उसकी सारी ग्लानि दूर हो गई और उसने हंसते हुए मेरा बाजू थामकर कहा, "चलो आज बाग से बाहर चिनारो के झुंड में खेलें। आज हम लाल पत्तों की बहुत-सी किश्तियां बनाकर नदी में तैराएंगे।"

हम लोग किश्तियां बनाने मे व्यस्त थे कि इतने में हमारा नौकर दौड़ता हुआ मेरे पास आया और बोला, "चलो, मांजी तुम्हें बुलाती हैं।"

मैंने तारां से कहा, "तुम यहीं बैठी किश्तियां बनाओ, मैं अभी घर से होकर आता हूं।"

तारां ने अपनी छोटी-सी नाक पकड़कर कहा, "जल्दी आना।"

"अभी आता हूं।"

मैं हमीदे के आगे नाचते हुए चलने लगा, बल्कि दौड़ने लगा।

बंगले के बाहर बरामदे मे मेरे पिताजी खडे थे और मेरी मांजी हैरान और परेशान खड़ी थीं। घर के सारे नौकर-चाकर एक ओर पंक्ति-सी लगाए नीचे सिर झुकाए खड़े थे और उन सब लोगों की आंखों में आंसू थे।

मेरी माजी रो-रोकर दुपट्टे के आंचल से अपने आंसू पोंछ रही थीं और मेरे पिताजी बहुत परेशान हाल होकर बरामदे मे टहल रहे थे।

मालूम हुआ बहादुर के फरार हो जाने का सारा अपराध राजाजी ने मेरे पिताजी के सिर पर डाल दिया था और उन्हे चौबीस घंटे के अंदर-अंदर रियासत से बाहर निकल जाने का हुक्म दे दिया था।

तीनो कम्पाउण्डर हाथ बांधे इश्क़पेंचा की बेल से लगकर खड़े थे। उनके चेहरे उदास और पीले थे और उनके होंठ अंदर को धंसे हुए थे। उनके निकट शाही महल का दूत राजाजी का फर्मान हाथ में लिए खड़ा था और उसके समीप ख्वाजा अलाउद्दीन दृष्टि झुकाए मेरे पिताजी से कह रहे थे :

"राजाजी बेहद गुस्से में थे। वे तो आपकी गर्दन उड़ा देना चाहते थे, पर मैंने मना किया। फिर वे यह सोच रहे थे कि आपका मुह काला करके आपको गधे पर बिठा बाज़ार मे घुमाया जाए और जेल में डाल दिया जाए। मैंने फिर

मना किया। अन्त में बड़ी मुश्किल से वे इसपर राज़ी हुए कि आपको चौवीस घंटे के अन्दर बंगला खाली करके रियासत-वदर कर दें। मैंने बहुत समझाया-बुझाया पर आप जानते हैं—सारे दरवार में मैं ही एक हकपरस्त अकेला हूं, जो सवके लिए लड़ता हू। दूसरे लोग तो वस खुशामदी टट्टू की तरह राजा साहव की हां मे हां मिलाना जानते है।"

"वजा फरमाया आपने।" मेरे पिताजी धीमी लेकिन तलवार की तरह तेज धारवाली आवाज़ में वोले।

फिर मुड़कर वे मेरी मां से वोले, "सामान वांधो।"

मेरी मां रोते-रोते अन्दर चली गईं और अन्दर जाकर नौकरों को आवाज़ें देने लगी।

ख्वाजा अलाउद्दीन वोले, "राजा साहव का हुक्म है—आज से यह नौकर आपकी आज्ञा मे नहीं हैं। अगर आप इनसे कोई काम लेंगे तो यह बेचारे भी डिसमिस हो जाएगे।"

"हमीदे, वेगम, अमरीकसिंह, दित्ता!" मेरी मां वुला रही थी। सव लोग सिर झुकाए चुपचाप खड़े थे। कोई अपने स्थान से नही हिला। मेरे पिताजी ने क्रोध की दृष्टि से ख्वाजा अलाउद्दीन की ओर देखकर कहा।

"कोई हर्ज नही है। हम अपना सामान खुद ही वाध लेंगे। आप इतनी कृपा मुझपर कीजिए कि सामान उठाने के लिए कुछ मजदूरो और मेरी पत्नी और वच्चे के लिए एक सफरी पालकी और कहारो का प्रवन्ध कर दीजिए।"

ख्वाजा अलाउद्दीन ने झुककर हाथ बाधकर आदाव वजाते हुए कहा, "मैं आपका खादिम हूं डाक्टर साहव! दो वार आपने मेरी जान वचाई है। आप मेरी चमड़ी की जूतिया वनाकर पहन सकते हैं; क्या करूं, सरकार आली के हुक्म से मजवूर हू, वर्ना मैं यू वुरी खवर देनेवाला वनकर आपकी खिदमत में हाज़िर न होता। मगर वन्दा राजा साहव के फर्मानेशाही से मजवूर होकर यहां हाज़िर हुआ है। आप घवराइए नही, अभी आधे घंटे में मज़दूर और पालकी आपके दौलतखाने पर भिजवा देता हूं।"

उसके पश्चात् ख्वाजा अलाउद्दीन ने शाही दूत को आंख से संकेत किया और दोनों वहां से रफूचक्कर हो गए। मेरी मां अकेले ही सव सामान वांधने लगी। मेरे पिताजी ने अन्दर जाकर उनसे कहा, "सब सामान बांधने की

आवश्यकता नहीं। बस ज़रूरी और कीमती सामान बांध लो। रियासत की सीमा यहां से पन्द्रह मील दूर है। हमें चौबीस घंटों से पहले-पहले इस सीमा से बाहर निकल जाना चाहिए।"

किन्तु मेरी मा ने कोई उत्तर न दिया और पहले के समान ख़ामोशी से आंसू गिराती हुई सामान बांधने लगी।

अब तक तो मैं भौंचक्का खडा था। फिर अचानक मुझे कुछ याद आया और मैंने चिल्लाकर रोना शुरू किया।

"क्या है मुन्ने ?" पिताजी ने ज़रा ढीले स्वर में कहा।

"यह सब मेरा कुसूर है", मैंने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा, "मैंने अंग्रेजी चिडिया का अंडा चुराया था, इसलिए हमारे घर पर यह आफत आई है। पर पिताजी, मैं अंडा चुराने के लिए पेड़ पर नही चढ़ा था। मैं और तारा अंडे देख रहे थे। हम उसको अपने हाथों मे लेकर देख रहे थे कि अडा हमारे हाथों से फिसलकर नीचे धरती पर जा गिरा।"

मैंने रो-रोकर सारी कहानी सुनाई। मांजी एकदम सामान बांधते-बाधते उठकर खड़ी हो गईं और मुझे अपनी गोद मे लेकर प्यार करते हुए बोली, "नही बेटा, इसमे तुम्हारा कोई कुसूर नहीं है। तुम्हारा कोई कुसूर नही है, यह तो अपने भाग्य ही ऐसे हैं, यह तो अपने कर्मों का फल है…।"

अचानक मेरे पिताजी गरजकर बोले, "तो क्या उसे जान से मार देता ? कर्मो का फल है, कर्मो का फल है। यदि तुझे ऐसे ही कर्म-धर्मवाला चाहिए था तो एक डाक्टर से शादी क्यों की थी ? एक जल्लाद से करती, जो राजाजी के इशारे पर उनके हर विरोधी का सर काट लेता।"

मांजी सहमकर बोली, "मैं तुमसे कब कह रही हूं। मैं तो अपने डरे हुए बच्चे को बहला रही हूं।"

यह कहकर माजी ने मुझे अपने गले से लगा लिया और हम दोनों मिलकर रोने लगे। पिताजी क्रोध से पांव पटककर कमरे से बाहर चले गए।

मांजी ने बहुत-सा आवश्यक सामान बांध लिया था, किन्तु मज़दूर अभी तक नही आए थे।

कोई दो घटे की प्रतीक्षा के बाद अलाउद्दीन का आदमी आया। उसने आकर बताया कि कही कोई मज़दूर नही मिलता है और कोई सफरी पालकी-

चारा खाली नहीं है।

इतना कहकर वह आदमी तत्काल ऐसे भाग गया जैसे उसके पीछे शिकारी कुत्ते लगे हुए हो।

उसके जाने के बाद ही घर के सारे नौकर गायब हो गए। न नौकर थे, न माली थे। न कम्पाउण्डर थे। कही पर किसीकी आवाज़ न आती थी। सारा बंगला भांय भांय कर रहा था।

मेरे बाप ने मेरी मां से निराश स्वर में कहा, "काके दी मा, सारा सामान यहीं छोड़ दो। अब ऐसे ही चलना होगा।"

यह कहकर मेरे पिताजी ने मुझे अपनी गोद मे उठा लिया और मेरी मां की ओर देखने लगे। जैसे खामोश निगाहो से उसे घर से बाहर निकल आने के लिए कह रहे हों।

पुरुष के पास तो बहुत कुछ होता है। उसके दोस्त होते हैं, उसका काम होता है; एक बहुत बड़ी फैली हुई विशाल दुनिया होती है। किन्तु स्त्री के पास तो केवल उसका एक घर होता है। मेरी मां ने बेबस और विवश दृष्टि से मेरे पिता की ओर देखा और रुक-रुककर बोली :

"अगर तुम इसी वक्त राजाजी के पास जाकर उनके पाव छू लोगे तो शायद वे तुम्हे माफ कर देंगे।"

मेरे पिताजी ने गरजकर कहा, "बाहर निकलो।"

मेरी मां ने बिलकुल बेबस और मजबूर होकर पुनः अपने हरे-भरे घर की ओर देखा। दिन-रात की एक-एक क्षण की मेहनत से उन्होंने यह घर सजाया था। इस घर मे उनकी पूजा का कमरा था, उनका सुन्दर किचन था। इस घर मे वह कमरा था जहां मैं पैदा हुआ था। इस घर में उनके सोफे थे, पलग थे, अलमारियां थी, आईने थे, पर्दे थे, टेबिल-लैम्प थे—इस घर की एक-एक ईंट से स्त्री के प्रेम, उसका निबाह, उसके परिश्रम और घरदारी की महक आती थी। कैसे एक स्त्री इस घर को छोड़कर जाए!

मांजी बिलखती हुई घर के एक-एक सामान और फर्नीचर से लग-लगकर रोने लगी, जैसे कोई अन्तिम बार अपने प्रिय लोगो के गलों से लगकर बिछुड़ रहा है।

मेरे पिताजी की आंखों मे आंसू आ गए। वे कुछ न कह सके। धीरे से

मुझे गोद में उठाते हुए कमरे से बाहर आ गए। बाहर बरामदे से निकल गए। बरामदे से निकलकर बाग की रविश पर आ गए। रविश से चलकर बंगले के बडे फाटक से गुजरकर बाहर सडक पर आ गए—जो नदी को जाती थी।

अचानक माजी सब कुछ छोड-छाड़कर पागलों के समान बंगले से बाहर निकलकर हमारे पीछे-पीछे भागी। उनकी साड़ी रास्ते में उलझ गई थी और वे अपना एक छोटा-सा बक्स थामे गिरते-गिरते बची। पिताजी ने रुककर सड़क पर उनकी ओर देखा और फिर आगे चलने लगे। मांजी रोती-रोती पीछे आने लगीं।

सडक सुनसान थी। इस समय पचासो आदमी इस सड़क पर चलते हुए मिलते थे। किन्तु आज इस सड़क पर कोई न था। एक ग्वाला वटंग के वृक्ष के नीचे गाय-भैंसें चरा रहा था। हमें देखते ही वह खेतो मे छिप गया।

घाटी से उतरकर जब हम नीचे के रास्ते पर पहुंचे, तभी रास्ते मे एक खच्चरवाला मिला, जो तीन खच्चरों को आगे लगाए उन्हे सोटी से हांकता हुआ कुछ गुनगुनाता हुआ चला जा रहा था। पिताजी ने उसे रोककर कहा :

"ऐ खच्चरवाले! हमे सरहद तक ले चलोगे?"

"क्यो नही, सरकार!" खच्चरवाले ने फौरन असावधानी मे कहा। किन्तु उसने जब ध्यान से मेरे पिताजी की सूरत देखी तो उसके होश उड़ गए। घबराकर बोला, "नही सरकार, नही। मेरे तो खच्चर खाली नही है। मैं तो नदी के उस पार नही जा रहा हूं। इस पार ही रह जाऊंगा।"

यह कहकर वह उचककर एक खच्चर पर बैठ गया और तीनों खच्चरो को जोर से हांकते हुए, दौड़ाते हुए बहुत आगे निकल गया।

नदी के किनारे धान के खेत थे और धान के खेतो से परे किसानो के कुछ घर एक झुंड की सूरत में एक ऊची जगह पर खड़े थे। जब हम इन घरो के निकट से गुज़रे तो क्या देखा कि किसानो ने घरों के दरवाज़े बन्द कर लिए है और बाहर की कच्ची गली मे कोई नही है। केवल कुछ किसान सिर झुकाए खड़े हैं और हमसे आंखें तक नही मिला रहे है।

मेरे पिताजी, मैं और मेरी मांजी—हम तीनों उनके समीप से गुज़रने लगे तो कुछ किसानो ने आगे बढ़कर मेरे पिताजी के कदम छू लिए। वे मुंह से कुछ नही बोले और वे इसलिए नही बोले कि अभी उनका समय नही आया था।

अभी वे कुछ कर नही सकते थे—केवल आंखों से रो सकते थे।

नदी पर पहुंचकर मेरे पिताजी ने मुझे अपने कंधों पर बिठा लिया और मेरी मां का हाथ पकड़कर नदी पार करने लगे। पतझर के दिन थे, इसलिए पानी कही पर गहरा नही था; किन्तु स्थान-स्थान पर बहुत तेज था और तट के नीले-नीले पत्थर फिसलते हुए-से थे। दो बार मेरी मां फिसलकर पानी में गिर गईं और उनके सारे कपड़े भीग गए।

नदी के ऊंचे किनारे पर पहुचकर मेरी मां ने एक पेड़ की आड़ में अपने गीले कपड़े निचोड़ लिए और फिर तत्काल उन्हे पहन लिया। अब हम लोग जल्दी-जल्दी कदम बढाकर कुदरतशाह की ढक्की पर चढने लगे। कभी तो मैं पैदल चलता था और जब थक जाता था तो मेरे पिताजी मुझे उठा लेते थे। और जब मेरे पिता थक जाते थे तो मेरी मां मुझे उठा लेती थीं; और जब वे दोनों थक जाते थे तो मैं स्वयं चलने लगता था।

जब हम कुदरतशाह की ढक्की पर पहुंचे तो सूरज बिलकुल बीच में था। इस ऊंची ढक्की पर पहुंचकर जब हमने मुड़कर देखा तो हमारे सामने इलाके की सारी वादी थी। उसके खूबसूरत धान के खेतों मे बल खाती स्वच्छ नदी थी। नदी के पार घाटी तक खुशनुमा पेडों से घिरा हुआ हमारा बंगला था। और बाग के-पश्चिमी कोने पर चिनारो के चार पेड़ खड़े थे, जिनके नीचे मैं तारां को किश्तियां बनाते छोड़ आया था।

तारां, जो चिनारो के नीचे बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

मैंने वादी की तरफ दोनो हाथ फैला दिए और रोकर कहा, "मां, मुझे घर ले चलो। मां, मैं घर जाना चाहता हूं.... ।"

मेरी मां ने आंसू पी लिए और मुड़कर मेरे बाप की ओर देखा। मेरे पिता तत्काल उठ खडे हुए। एक दृष्टि से उन्होने सारी वादी को जैसे अपने दिल में समेट लिया। फिर तत्काल मुड़कर मेरी मां से बोले, "आराम करने का समय नही है। आधा दिन गुज़र चुका है और हमे शाम होते-होते रियासत की सरहद से बाहर निकल जाना चाहिए। और अभी दस मील का सफर बाकी है।"

मेरे पिताजी ने मुड़कर सामने आनेवाले रास्ते की ओर देखा। सामने का रास्ता पीर पंजाल के पहाड़ की चोटी तक जाता था, जहां तक राजा की रियासत की सीमा थी। किन्तु सामने सीधी तीखी चढ़ाई थी। रास्ता वृक्षहीन,

टेढ़ा-मेढ़ा और नंगा था। कहीं पर एक झाड़ी, एक पेड़ का साया तक न था। चारों तरफ़ धूप खुली और तेज थी।

"उठो, उठो—अब आराम करने का समय नहीं है", मेरे पिताजी फिर कठोरता से बोले।

मेरी मां उठ खड़ी हुईं। एक अन्तिम दृष्टि से उन्होंने ऐसे दयनीय ढंग में वादी की ओर देखा जैसे उसे उठाकर अपने दिल मे रख लेंगी। फिर मुड़कर भीगी दृष्टि से मेरे बाप को ताकते हुए बोलीं, "पर हम जाएंगे कहां? उस रियासत से तुम रेजीडेन्ट से झगड़ा करने पर निकाले गए थे। इस रियासत के राजाजी से तुमने झगड़ा कर लिया। अंग्रेजो से तुम लड़ते, राजाओं से तुम झगड़ा कर लिया। अब हम जाएंगे कहां? कौन हमें शरण देगा?"

मेरे पिताजी गरजकर बोले, "चलती हो तो चलो, वर्ना तुम भी राजाजी के महल मे जाकर बस जाओ। उन्हें हमेशा औरतों की ज़रूरत रहती है।"

इतना कहकर पिताजी ने सदा के लिए वादी की ओर से मुंह मोड़ लिया और ढक्की के मोड़ की तरफ बढ़ने लगे। मेरी मां चोट खाई हुई नागिन की तरह उठी। उन्होंने जोर से वादी की तरफ थूक दिया और फिर कुछ कहे-सुने बिना मुझे बाज़ू से घसीटती हुई मेरे पिताजी के पीछे-पीछे भागीं।

मेरे पिताजी आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे पत्थरों पर लड़खड़ाती, डगमगाती हुई मेरी मांजी चल रही थी, और उनके पीछे-पीछे मैं रोता हुआ आ रहा था, और कह रहा था, "मांजी, पिताजी, मुझे घर ले चलो··· मुझे घर ले चलो···।"

किन्तु उन दिनों मैं बच्चा था और मुझे ज्ञात न था कि जो सत्य की राह पर चलते हैं, उनके लिए कोई घर नही होता और कोई शरण-स्थान नहीं होता और कोई सायादार वृक्ष उनकी राह मे नही होता; और वे एक दृढ निश्चय अपने हृदय में लिए इस राह से गुज़रते जाते हैं और अपने पीछे यादों के चिनार छोड़ जाते हैं; जो आग के शोलो की तरह धरती से निकलते हैं और आकाश की तरफ सिर ऊंचा करके उनकी शहादत की गवाही देते है।

○ ○ ○